Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

गुरुकुल काँगड़ी

७५
नये पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िए

तरह-तरह के बन्दर २
—नरेन्द्रसिंह माथुर

सिगरेट के बारे में इतना तो जानिये ही १२
—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

जब समुद्र का मन्थन होता है १६
—डा. नरेन्द्रमोहन बंसल

विद्युदणि-रश्मि, प्लाज्मा टार्च २२
—अशोक कुमार चौबे

नीम २७
—दिनेश चौहान

शारीरिक प्रतिरक्षा का मन्त्रदाता, एडवर्ड जेनर ३०
—वीरेन्द्रकुमार

अन्तर्राष्ट्रीय शान्त-सूर्य वर्ष ३३
—हरीश अग्रवाल

जन्तु मशीन सदृश चलते हैं ३७
—डा. महेश्वरसिंह सूद

यह लाख है ४३
—नरेन्द्र छाबड़ा

शिकार के पक्षी ४५
—कुँवर सुरेशसिंह

अन्तरिक्ष-उड़ान में ईंधन-सम्पूर्ति ५४
डा. महेन्द्रकुमार

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४१
विचित्र संसार ५२
विज्ञान क्लब ५७
इनाम लो ६०
करो और देखो ६१
आपके प्रश्न ६२
तुम्हारी कलम से ६४

अपनी बात

विगत अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष (१९५७-५८) के पश्चात् उतना ही महत्त्वपूर्ण और उससे भी वृहत् अभियान इस बार १ जनवरी १९६४ से ३१ दिसम्बर १९६५ तक अन्तर्राष्ट्रीय शान्त सूर्य वर्ष के नाम से किया जाएगा। प्रयोगों के लिए विशेषत: दक्षिणी ध्रुव को चुना गया है।

इस अभियान की संयोजक संस्था ब्रिटिश आर्कटिक सर्वे (British Arctic Survey) है। इसके तत्त्वावधान में जो २१ चुने हुए वैज्ञानिक तथा प्राविधिज्ञ भेजे जाएँगे उनमें सोवियत डा. ई. जी. ग्रिकुरोव (Dr. E.G. Grikurov) तथा ब्रिटिश डा. सी. स्विथिनबैंक (Dr. C. Swithinbank) और इसी संस्था के शोध-निदेशक सर विवियन फुक्स (Sir Vivian Fuchs) के नाम उल्लेखनीय हैं। जो दस प्रमुख राष्ट्र इस अभियान में भाग लेंगे, उनमें भारत भी सम्मिलित होगा।

इन्हीं दो वर्षों के दरम्यान सूर्य की गति-विधि अल्पतम होगी और तभी सम्भव होगा कि अन्तरिक्ष किरणों, ध्रुवीय ज्योतियाँ तथा पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्रों के सूक्ष्म अध्ययन किये जाएँ।

आनेवाले अन्तरिक्ष-अभियानों की सुरक्षार्थ तथा मानव के कल्याण हेतु किये जाने वाले ऐसे शुभ अभियानों की पूर्ण सफलता हमारी आन्तरिक कामना है।

वर्ष ४ **अंक ११**

विज्ञान लोक

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह-तरह के बन्दर

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

नरेन्द्रसिंह माथुर

बन्दर संसार के लगभग सभी भागों में पाये जाते हैं। इनकी अनेक जातियाँ, उप-जातियाँ हैं। बन्दरों की कुछ प्रमुख जातियाँ निम्न हैं।

लंगूर

भारत, श्रीलंका, वर्मा, इण्डोचाइना मलाया तथा इण्डोनेशिया के द्वीपों में पाया जाने वाला यह बन्दर कम से कम २० उप-जातियों में विभाजित है। तदनुसार इनके आकार-प्रकार, रंग-रूप और रहन-सहन में भी भिन्नता पायी जाती है। इनके शरीर का रंग भूरा तथा मुँह, कान और हाथ-पाँव के पंजे गहरे काले होते हैं। सिर के बाल कुछ आगे को इस प्रकार निकले रहते हैं जो टोपी सरीखे दिखते हैं। मादा अपने बच्चे को पेट से चिपकाये फिरती है। बच्चे कभी-कभी जुड़वाँ भी होते हैं।

इनमें सुमात्रा के लाल तथा जावा के काले लंगूर और भी आकर्षक होते हैं। काले लंगूर समूचे स्याह कोयले जैसे होने के कारण नीग्रो भी कहलाते हैं। इण्डोचाइना में पाये जाने वाले लंगूरों को डूक (douc) कहते हैं। ये डूक आकर्षक, चटकीले तथा बहुरंगी होते हैं। इनके आधे-आधे हाथ-पाँव काले, सिर भूरा, शरीर चमकीला पीला, गला लाल तथा पूँछ सफेद होती है।

भारत में लंगूर बड़ी श्रद्धा के पात्र हैं। इनमें एक विशेषता यह है कि ये लाल मुँह वाले बन्दरों की तरह झपटना, खसोटना, घुड़कना आदि कुछ नहीं करते। इनकी पूँछ लम्बी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का लम्बी पूँछ का लंगूर

होती है किन्तु इस पूँछ से ये कोई महत्त्वपूर्ण काम नहीं लेते।

गुयेरेजा कोलोबस

अफ्रीका का यह प्रसिद्ध बन्दर गुयेरेजा कोलोबस (*Guereza Colobus*) शरीर में केवल तीन फुट लम्बा होता है किन्तु इसकी पूँछ ४० इंच लम्बी होती है। इसके हाथ में अँगूठा नहीं होता, केवल एक खूँटी जैसी उभरी रहती है। यह इतना चुस्त तरुनिवासी है कि कभी-कभी तो पेड़ों पर ही जिन्दगी गुजार देता है और जमीन पर उतरता तक नहीं। इसका शरीर गहरा काला होता है किन्तु भौंहों पर एक पट्टी, और गाल, ठोड़ी तथा कंधे के बाल सफेद होते हैं। इसके लम्बे बाल औद्योगिक महत्त्व के हैं। स्वभाव से यह बन्दर शान्तिप्रिय है। अफ्रीका के हिमाच्छादित किलिमान्जारो पर्वत-शिखरों के क्षेत्र में रहने वाले इसके जाति-भाइयों की पूँछ लम्बी तथा सफेद बालोंयुक्त होती है। इसके पेट की रचना विचित्र होती है क्योंकि इसका पेट अन्दर ही अन्दर अनेक कक्षों में विभाजित रहता है। उन कक्षों से पत्तियों का भोजन पचने में सहायता मिलती है। यह अपने झुण्ड के साथ जलाशयों के निकट विचरना पसन्द करता है।

अमरीकी बन्दर

मध्य तथा दक्षिणी अमरीका के बन्दर यूरोप तथा एशिया महाद्वीपों के बन्दरों की अपेक्षा बहुत भिन्न तथा विचित्र होते हैं। ये अपनी पूँछ से पाँचवें हाथ का काम निकालते हैं जबकि अन्य बन्दरों की पूँछें केवल शोभा का काम देती हैं। इसके अतिरिक्त ये अधिक शान्त, सीधे और मृदु स्वभाव के हैं। अतः इन्हें सहज ही पाला भी जा सकता है। अन्य बन्दरों के मुँह में जो थैलीनुमा खोल पायी जाती है, वह इनमें नहीं होती।

हाउलर बन्दर

हाउलर (howler) अर्थात् पुकारने वाला यह बन्दर दक्षिणी अमरीका का प्रसिद्ध

भारत का यह रहीसस बन्दर पोलियो उन्मूलन में बहुत सहायता करता है

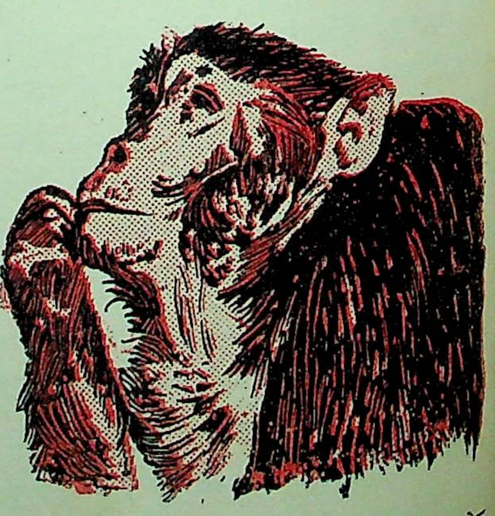

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राजील-निवासी यह मारमोसेट बन्दर
अति आकर्षक सुनहरे रंग का है

प्राणी है। इसके गले में स्वर-यन्त्र के निकट एक विशिष्ट अस्थि लगी होने से इसका स्वर सबसे अलग पहचाना जा सकता है। वह स्वर इतना तीव्र होता है कि शान्त रात्रि में दो मील दूर तक सुनाई देता है। इसके स्वर में क्रोधभरी गुर्राहट का उतना पुट नहीं होता जितना कि एक दर्दीले स्वर का। यह इसके स्वभाव का द्योतक है। इसका शरीर काला तथा भव्य, चेहरा सुशोभन दाढ़ीयुक्त ग्रौर पूँछ बड़े काम की होती है। भिन्न-भिन्न विस्तारों में इसके शरीर में भी भिन्नता मिलती है। यह ग्रपनी टुकड़ी बनाकर ही विचरता है। टुकड़ी का नायक वही चुना जाता है जो डील-डौल में सबसे बड़ा हो। अधिकांशतः टुकड़ी का एक ही सदस्य पुकार फेंकता है, किन्तु कोई विशेष प्रसंग होने पर सबके सब भी सुर में सुर मिलाकर शोर मचाते हैं। इसका मुँह कुछ लम्बा और कुत्ते से मिलता-जुलता दिखता है। इसके दाँत लम्बे ग्रौर पैने होते हैं।

दक्षिणी अमरीका के अमेजन-क्षेत्रों में ऐसे बन्दर भी पाये जाते हैं जो आधे उल्लू या गिलहरी जैसे दिखते हैं। ये सिबाइड्ज (*ceboids*) वर्ग के हैं। इन्हें अर्द्धवानर (half-monkeys) कहते हैं। इस वर्ग में कम से कम १० उपजातियाँ हैं। इनके अंगों की कुछ विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं—इनके हाथ-पाँव के पंजों में नुकीले और मुड़े हुए नाख़ून होते हैं। इनके शरीर पर घने बाल होते हैं। इनकी पूँछ रोयों से भरपूर, कहीं तो कुत्ते जैसी नोकदार और कहीं बिल्ली जैसी

दक्षिणी अफ्रीका में नील बन्दर के नाम से प्रसिद्ध यह वेरवेट बन्दर अपने काफी लम्बे हाथ पाँव तथा पूँछ युक्त शरीर की सफाई का बहुत खयाल रखता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोल होती है। अँगुलियाँ काफी लम्बी होती हैं। मुँह छोटा तथा आँखें उल्लू जैसी, केवल सामने की ओर देखने योग्य होती हैं। इनमें निम्न बन्दर उल्लेखनीय हैं।

डोरोकोलिस (*douroucoulis*)—यह छोटा बन्दर पूर्णतया निशिचर अर्थात् रातों को बाहर निकलने वाला है। अत: इसे उलूक-बन्दर (owl-monkey) भी कहते हैं। इसका शरीर एक फुट से बड़ा नहीं होता। शरीर पर घने, मुलायम बाल रहते हैं। सिर गोल तथा चेहरा चपटा होता है। इनकी बड़ी-बड़ी नीली आँखें चेहरे से मानो निकली पड़ती हैं। दोनों आँखें पास-पास सटी हुई होती हैं जिन्हें ऊँचा-नीचा किया जा सकता है। मुँह थूथन जैसा, नन्ही ठोड़ी समेत पूर्ण गोलाकार होता है और दोनों छोटे कान घने बालों में छिपे रहते हैं। पूँछ लम्बी तथा बालोंभरी होती है। आँखों के चारों ओर एक सफ़ेद घेरा बना होता है जो सामान्यत: दूसरी बड़ी आँख जैसा दिखता है किन्तु विशेष मुद्रा में सफेद पट्टी के रूप में हो जाता है।

साकी—इनमें दो प्रकार के साकी (saki) पाये जाते हैं, रुपहले तथा दाढ़ीयुक्त। रुपहले साकी बन्दरों के शरीर पर लम्बे काले बाल होते हैं जो सिर पर टोपी का, शरीर पर ओवरकोट का और पूँछ पर ब्रुश का काम देते हैं। इनका मुँह कुत्ते जैसा होता है। जिन बन्दरों में सामने के बाल सफेद होते हैं वे रुपहली आभा देते हैं। ये फलाहारी हैं और रात्रि को पेड़ों की शाखाओं पर विश्राम करते हैं। इनकी भी अपने गिरोह की अलग पुकार है जो दूर तक सुनाई देती है।

गिलहरिये बंदर (squirrel-monkeys)-ये देखने में पूरे बन्दर नहीं मालूम होते। पूँछ से तो ये गिलहरी जैसे दिखते हैं। इनके कान बड़े होते हैं। ये भी सैकड़ों के झुण्ड बना कर चलते हैं। यद्यपि इनका मृत्यु-अंक अपेक्षा-कृत काफी बढ़ा हुआ रहता है तथापि अपवाद-स्वरूप इनमें कई दीर्घजीवी भी पाये जाते हैं। वे दीर्घजीवी शरीर में भी बढ़े-चढ़े होते हैं, लगभग चौगुने। इनकी पूँछ बड़ी और घने बालोंयुक्त होती है। पेड़ों के फल और नन्हें कीड़े इनके प्रिय आहार हैं।

केपूचिन बंदर—दक्षिणी अमरीका के समस्त बन्दरों में केपूचिन बन्दर (capuchin monkeys) ही सबसे सुन्दर और सयाने होते हैं। ये पालतू अवस्था में कई मनोरंजक कार्य कर दिखाते हैं। एक उदाहरण में देखा गया था कि एक पालतू बन्दर रंग-बिरंगे चाक के टुकड़ों से अपने पिंजरे की जाली का नमूना धरती पर रेखाएँ खींचकर बना लेता था। पर्याप्त अभ्यास के पश्चात् वह सही डिजाइन भी बनाने लगा था। दूसरे उदाहरणों में इन पालतू बन्दरों से घरेलू कामकाज—बर्तन धोना, सुखाना आदि भी—लिया जाता था। इनसे मित्रता बढ़ाना बहुत सरल है।

ऊनी बंदर—उदास सूरत के और अत्यन्त विनम्र स्वभाव के ऊनी बन्दर (woolly monkeys) भारी और स्थूलकाय होते हैं। शरीर के रोयें कुछ छोटे किन्तु इतने घने होते हैं कि भेड़ के ऊन सरीखे दिखते हैं। प्रारम्भ में तो काफी समय तक ये कच्चे फलों पर गुजर कर लेते हैं किन्तु बाद में मांसाहारी भी बन जाते हैं। बीच-बीच में फूलों, पत्तियों पर भी हाथ साफ करते रहते हैं। ये छोटी-छोटी पारिवारिक टुकड़ियों में चीख-पुकार करते हुए विचरते हैं।

मकड़ बंदर—मकड़ी जैसे पतले, लम्बे हाथ-पाँव वाले होने से इन्हें मकड़ बन्दर (spider monkeys) नाम दिया गया है। अपने लम्बे हाथ-पाँवों से ही ये पेड़ों पर लम्बी छलाँगें भरते रहते हैं। इनकी पूँछ भी उछल-कूद में बहुत सहायता करती है। इनमें विचित्रता यह है कि पेड़ों पर जितने चुस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं, भूमि पर उतने ही सुस्त हो जाते हैं। यह इसलिए कि इनके लम्बे, पतले पाँव भूमि पर इनका भार इतनी सरलता से नहीं सम्हाल पाते जितनी सरलता इन्हें उनके बल पेड़ पर लटकने में रहती है ।

चपटी नाक वाले बंदर—भारत और वर्मा में पाये जाने वाले चपटी नाक के वन्दर (snub-nosed monkeys) बड़े शरीर के, कठोर, मजबूत तथा रंग-बिरंगें रोयेंदार होते हैं। कहीं ये भूरे रंग के तो कहीं सुनहरे रंग के होते हैं। भूरे शरीर वाले स्याह मुँह के तथा सुनहरे शरीर वाले खुलते नीले मुँह के होते हैं। इनके चेहरे लंगूर से काफी मिलते-जुलते हैं। नाक ऐसी दिखती है मानो दौड़ते हुए किसी दीवार से टकराकर चपटी हो गयी हो। उत्तर में तिब्बत से गोवी मरुस्थल के दक्षिणी भाग तक तथा निकट के हिमाच्छादित क्षेत्रों में ये विचरते देखे गये हैं। ये व्यवस्थित टुकड़ियों में अनुशासनबद्ध घूमते हैं। ये सर्वभक्षी हैं। जब मौज आती है तब किसी भी बाजार-हाट में उतर पड़ते हैं और जी भरकर लूटते-खाते हैं। बाजार के लोग इन्हें रोकते भी नहीं।

बोर्नियो के बंदर (proboscis monkeys)—उपरोक्त बन्दरों के निकट सम्बन्धी हैं और उनसे काफी मिलते-जुलते हैं। ये केवल बोर्नियो द्वीप में पाये जाते हैं। ये शरीर में और भी कुछ बड़े किन्तु चेहरे से विदूषक लगते हैं। मादा तथा बच्चों की नाक तो ऊपर वर्णित चपटी नाक वाले बन्दरों जैसी होती है लेकिन नर की नाक के नीचे से मांस का एक अलग पर्दा ऐसा लटकता है जो मुँह के आगे से होता हुआ ठोड़ी के नीचे तक ३-४ इंच लम्बा पहुँचता है। इनका आहार केवल बाँस की पत्तियाँ हैं। ये सीधे-सादे और शान्त प्रकृति के होते हैं। अकसर इन्हें तैरने का भी आनन्द लेते हुए देखा गया है।

लम्बी पूँछ के बन्दर (long tailed monkeys)-इस श्रेणी में बीसियों उपजातियाँ हैं। इस श्रेणी के समस्त बन्दर लम्बी पूँछ के हैं। सहारा रेगिस्तान के दक्षिणी भाग तथा दक्षिणी अफ्रीका के प्रदेश इनके क्रीडास्थल हैं। इनकी शरीर रचना में भिन्नता न होने पर भी रंगों में भिन्नता है। हरे, नीले, काले डाएना (*diana*) तथा डाएडम (*diadem*) इनमें उल्लेखनीय हैं। रहन-सहन में ये वहुत साफ-सुथरे हैं। ये फुर्तीले और लड़ाकू बन्दर इतने तेज हैं कि अपना व्यूहाकार गिरोह बना कर शत्रुदल को दूर खदेड़ आते हैं।

मलाया के जंगलों में रहने वाला यह बन्दर स्वभाव से इतना सुस्त है कि इसका नाम ही स्लो लोरिस (slow loris) **पड़ गया है**

मैकेक—पूर्वीय गोलार्द्ध के बन्दरों में अनेक उत्तम जातियाँ मैकेक (*Macaques*) श्रेणी में पायी जाती हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनके मुँह में एक संग्राहक खोल रहती है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गालों से प्रारम्भ होकर गर्दन के नीचे तक पहुँचती है। यह खोल अतिरिक्त भोजन के संग्रह में काम आती है। इस श्रेणी में वानरों के अतिरिक्त र्हीसस (*Rhesus*) जाति के बन्दरों का भी समावेश होता है। इन बन्दरों की उपयोगिता बहुमुखी है। चिकित्सा तथा ओषधि-विज्ञान में इनका उपयोग विशेषतः होता है। साधारणतया अजायबघरों में भी ये ही देखने को मिलते हैं। अन्तरिक्ष उड़ानों के लिए आधी दूरी तक भेजने में इनका उपयोग किया गया था। ये बन्दर बंगाल में अधिकता से पाये जाते हैं। लाल मुँह और छोटी पूँछ के ये बन्दर अधिकतर भारतीय ही हैं। बर्मा, सियाम, मलाया, श्रीलंका तथा इण्डोनेशिया के द्वीपों में पाये जानेवाले केकड़ा-भक्षक (crab-eating), शूकर-पुच्छ (pig-tail), मूर (moor) तथा सिंह (lion) जाति के बन्दर भी इसी श्रेणी में आते हैं।

वानर (Apes)

बन्दरों और वानरों में मुख्य भेद यही है कि वानरों के बन्दरों जैसी पूँछ नहीं होती है। छोटे वानरों को वानर और वृहत्काय वानरों को वनमानुष कहेंगे। वनमानुषों में गोरिल्ला, चिम्पान्जी, ओरांग-उटान और गिवन सम्मिलित हैं। पहले हम छोटे वानरों की चर्चा करेंगे।

बेबून (Baboon)—अफ्रीका और अरब देश के निवासी हैं। इनका मुँह कुत्ते जैसा थूथनदार होता है। इन्हें वृक्षों की अपेक्षा भूमि पर विचरना अधिक पसन्द है। भूमि-विचरण के अन्तर्गत ही ये कभी-कभी टोली बाँधकर खेतों, खलिहानों में उतर आते हैं और धन-धान्य को अपार हानि पहुँचाते हैं। अपने शत्रुओं को भगाने के लिए पत्थर फेंकने का भी इन्हें अभ्यास रहता है।

गिनी (guinea) चकमा (chacma) तथा हेमड्रेज (hamadryas) बेबून की प्रसिद्ध

अफ्रीका की यह शृंगार-प्रिय रोलोवे बन्दरिया अपने रोयों तथा ठुड्डी के बालों को साफ-सुथरा रखती है। इसलिए इसे दढ़ियल बानू (bearded lady) भी कहते हैं

जातियाँ हैं। हेमड्रेज इन तीनों में प्रसिद्ध है। प्राचीन मिस्रवासियों द्वारा यह उसी श्रद्धा से देखा जाता था जैसे भारत में लंगूर। वे इन्हें मृत्योपरान्त विधिवत् ममी बनाकर सुरक्षित रखते थे। अबीसीनिया तथा अरब में भी इनकी शाखाएँ पहुँची हैं। शरीर में भारी-भरकम और शेर जैसे लम्बे बाल सारे शरीर को ढँके रहते हैं। बच्चों तथा मादा का शरीर गहरे भूरे रंग का तथा प्रौढ़ नर-वानर का हलका भूरा रहता है।

दक्षिणी अबीसीनिया में जब कभी इन्हीं के जाति-भाई गेलेडा (Gelada) वानरों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामना पड़ जाता है [illegible] युद्ध-कौशल देखने योग्य होता है। व्यूहाकार सैन्य सजाकर दोनों पक्ष घोर युद्ध में जुट जाते हैंऔर मनुष्यों जैसे पैंतरे दिखाते हैं। छिप-छिपकर छापा मारने की इनकी तथा गोरिल्ला वानरों की पद्धति के आधार पर ही आज के थल-युद्ध में छापामार आक्रमणों को गोरिल्ला-युद्ध कहा जाता है।

ये दोनों जातियाँ अपने-अपने नेता के नेतृत्व में टोलीबन्द रहती हैं। इन्हें अपने नाश्ते के लिए अधिकतर कन्दमूल, कीड़े-मकोड़ों तथा छिपकली आदि नन्हें जन्तुओं की तलाश रहती है। साथ ही ये पत्थरों, चट्टानों को उलटते-पुलटते तथा खेतों, क्यारियों को उखाड़ते-उजाड़ते भी नजर आते हैं। दौड़ने में ये घोड़े को मात करते हैं। इनके रौद्र रूप के आगे एक बार तो चीता भी काँप जाता है। जहाँ इनका बाहुल्य रहता है, वहाँ ये आतंक मचाये रहते हैं।

गिबन—मलाया, इण्डोनेशिया और सुमात्रा में पाया जाने वाला गिबन बुद्धि में तो विकसित है ही, नटबाज भी पूरा है। इसके हाथ कुछ अधिक लम्बे होते हैं—इतने कि सीधा खड़े होने पर भी जमीन को छू सकें। ये भी काले तथा अनेक रंगी होते हैं। ये डाल-डाल उछलने में बहुत कुशल हैं। इसीलिए सरकसवाले इनका उपयोग झूले के खेलों में करते हैं। इन्हें फल खाना बहुत प्रिय है। पालतू अवस्था में तथा प्रशिक्षित किये जाने पर ये अनेक मानवोचित कार्य कर दिखाते हैं। एक लेखक के शब्दों में—"गिबन सर्वाधिक साफ-सुथरा, विनम्र और बुद्धिमान जन्तु है। मेरे साथ दूर-दूर तक के प्रवासों में इसने मेरा न केवल मनोरंजन किया है, बल्कि कार्यभार भी हलका किया है। अपनी मेज पर सफाई से खाना-पीना, अपना बिस्तर लगा लेना तथा मेरे कीट-संग्रह के कार्य में इसने विलक्षण बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है।"

फिलिपाइन्स के इस मैकेक बन्दर को अभिमान है कि यह अन्तरिक्ष में ३६ मील की ऊँचाई नाप आया है

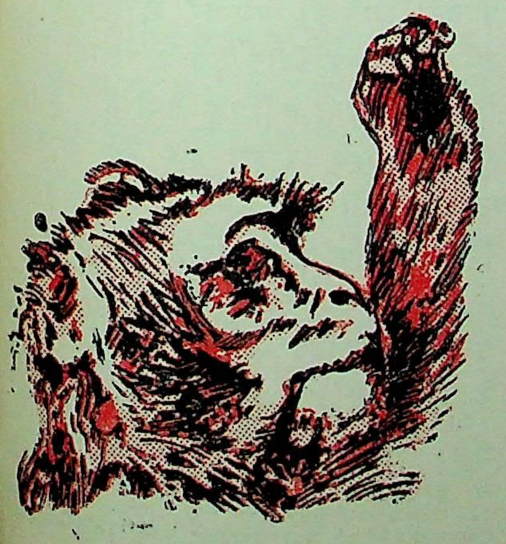

गोरिल्ला

वनमानुषों में यह सिरमौर है। इसकी ऊँचाई छह फुट से भी अधिक और फैले हुए दोनों हाथ नौ फुट की लम्बाई तक पहुँचते हैं। ये वजन में ४०० से ६०० पौण्ड तक पाये जाते हैं। यह वनमानुष शक्ति का अटूट भण्डार है। २-२॥ इंच मोटी लोहे की छड़ को सहज ही तोड़-मरोड़कर फेंक सकता है तथा एक ही चपेट में मनुष्य की बाँह तथा जाँघ को उखाड़ सकता है। इसका सिर और मुँह बहुत कुछ बेबून बन्दर से मिलता-जुलता है। इसके कान छोटे, नाक मोटी और बेडौल, फौलादी मांसपेशियाँ तथा गहरे काले बालों से भरा शरीर होता है।

अपनी श्रेणी के तीनों वानरों में सर्वाधिक शक्तिशाली होते हुए भी बौद्धिक स्तर में यह चिम्पान्जी से पिछड़ा ही रहता है। यद्यपि पालतू अवस्था में यह भी मानव का साथी बनकर रह सकता है तथापि इसके हठीले स्वभाव के कारण इससे भय बना ही रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

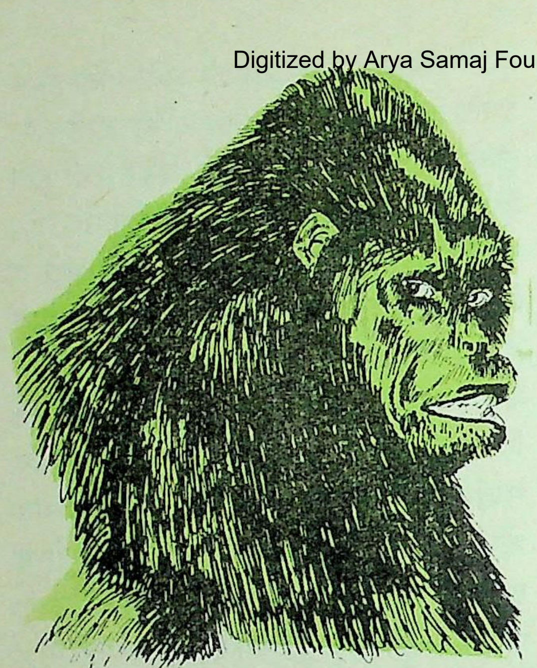

वनमानुषों का सिरमौर, गोरिल्ला

है। देखा गया है कि घर में खेल के मध्य खाने का ध्यान आ जाने पर यह खेल छोड़ देता है और सीधे ही खाने की आलमारी के पास जाकर, उसे खोलकर दो-चार कौर मुँह में भर लेता है और पुनः आलमारी बन्द करके खेल में जुट जाता है।

खाने के समय विक्षेप डालना खतरनाक हो सकता है। संसार-प्रसिद्ध फिल्म किंग कांग के लिए ऐसे ही भीमकाय गोरिल्ला को सिखाने में निर्देशक को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, वह केवल कल्पना की ही वस्तु है। खेल ही खेल में प्रायः इसे खाली डब्बे तथा पीपे आदि को ढोल बनाकर पीटने में बड़ा आनन्द आता है। सिखाये जाने पर यह बीड़ी-सिगरेट का भी अभ्यस्त होता देखा गया है। तब यह बड़े शौक से धूम्रपान करता है।

चिम्पान्जी

वनमानुषों में भीमकाय गोरिल्ला के पश्चात् इन्हीं का स्थान है। साधारणतया लम्बाई-चौड़ाई में ये गोरिल्ला से कम ही बैठते हैं किन्तु अपवादस्वरूप कहीं-कहीं उतने ही तथा कुछ, [illegible] विशालकाय पाये गये हैं। ऐसे तीन पालतू नमूने बर्लिन, लन्दन तथा रोचेस्टर के अजायबघरों में हैं। खड़ी अवस्था में इनकी ऊँचाई पाँच फुट तक पहुँचती है। इनके कान लम्बे और नाक पिचकी होती है। बालों के रंगों में विभिन्नता के कारण शरीर के रंग विभिन्न प्रतीत होते हैं।

ये अपने परिवार के साथ अमरीका के जंगलों में निर्द्वन्द्व घूमते रहते हैं। एक-एक नर अनेक मादाएँ लिये रहता है। ये किसी से डरते नहीं, साथ ही व्यर्थ उलझते भी नहीं। सामना पड़ जाने पर अवश्य डटकर मुकाबला करते हैं। इनकी विचित्र पुकार तथा निडर प्रवृत्ति से वहाँ के लोग भलीभाँति परिचित हैं और सामना हो जाने पर इन्हें चुपचाप मार्ग दे देते हैं।

मानव ने अपने कौशल से इनकी बुद्धिमत्ता का पूरा-पूरा लाभ उठाया है। पालतू अवस्था में इनकी बुद्धि को और भी विकसित करके इनसे आश्चर्यजनक कार्य कराये जा सकते हैं। सरकस में इनका खेल मुख्य आकर्षण होता है। परिवारों में रहकर कभी-कभी तो ये मानवों से भी श्रेष्ठ और जटिल कार्य कर दिखाते हैं। सिखाये जाने पर स्वयं कपड़े पहनना, खाने की मेज पर छुरी-काँटे तथा चम्मच से सफाईदार ढंग से खाना इनके लिए नयी बातें नहीं रह गयी है। अब तो गणित के प्रश्न तक हल कर देने के कुछेक उदाहरण मिले हैं। मानव से बढ़कर कौशल दिखाने के एक विशेष उदाहरण में देखा गया था कि एक कमरे की छत से केले का एक गुच्छा लटका दिया गया और केवल एक छड़ी के अतिरिक्त अन्य कोई सहायक वस्तु स्टूल आदि कमरे में न रहने दी गयी। मानव अधिक से अधिक यह कर सकता था कि छड़ी से उस गुच्छे को गिरा लेता जिससे केले अवश्य ही फूट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते। चिम्पान्जी ने अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए छड़ी को खड़ी करके पलक मारते ही उछलकर गुच्छे को हथिया लिया और छड़ी के गिरने से पहले ही उसके सहारे नीचे उतर आया।

ओरांग-ओटान

मानव से अधिकतम मिलते-जुलते चार श्रेणी के वनमानुषों में ये भी एक हैं। केवल बोर्नियो में ओरांग और सुमात्रा में ओटान पाये जाते हैं। मानवों से इनकी समानता के कारण वहाँ की भाषा में इन्हें वन-मानव (man of the woods) कहते हैं। इनके भी हाथ अपेक्षाकृत लम्बे होने के कारण ये तरु-जीवन के उपयुक्त हैं। गोरिल्ला और चिम्पान्जी के मुकाबले शक्ल में ये काफी भिन्न हैं। शरीर पर लम्बे, भूरे बाल उलझे-उलझे रहते हैं। पूर्ण वयस्क ओरांग चार फुट से भी कुछ ऊँचा होता है। भूमि पर चलने में इन्हें कठिनाई रहती है।

केवल तीन वर्ष की आयु में इनका वजन लगभग ५० पौण्ड रहता है। उस छोटी अवस्था में भी ये मानव के समकक्ष अपना बल प्रदर्शित करते हैं। आठ वर्ष की आयु इनकी युवावस्था मानी जाती है। तब इनका वजन लगभग पौने दो सौ पौण्ड तक पहुँच जाता है जो कि ६०० पौण्ड वजनी गोरिल्ला वर्ग के पश्चात् ही द्वितीय स्थान पर माना जाता है। सूझ-बूझ और बुद्धि में मानव से बढ़कर नहीं तो समान स्तर पर स्थित, ये फूलों को विशेष पसन्द करते हैं तथा मानवोचित कोमलता से उनका आनन्द भी लेते हैं।

स्वभावतः ये मानवों के संसर्ग और बस्तियों से दूर, जंगल में ही रहना पसन्द करते हैं। जब कभी शिशु अवस्था से ही इन्हें पालतू बना लिया जाता है, तब ये मानव-प्रवृत्तियों का आश्चर्यजनक अनुकरण कर दिखाते हैं। फिर तो ये मानव-परिवार के सदस्य ही बने रहते हैं और अपने वन-जीवन की ओर लौटने की उत्सुकता नहीं दिखाते। एक उदाहरण में तो पालतू ओरांग ने परिवार के सदस्यों से हिल-मिलकर गृहस्वामी को 'पापा' और गृहिणी को 'मम्मी' कहना सीख लिया था।

ओरांग-ओटान पेड़ों पर ही रात्रि-विश्राम करते हैं। इनका शरीर कम भारी नहीं होता फिर भी डाल-डाल को छलाँग फुर्ती से लगा लेते हैं। इनके हाथ-पाँवों की रचना डाल-डाल उछलने, कूदने के उपयुक्त होने के कारण गोरिल्ला और चिम्पान्जी जैसे मानवोचित कमाल ये भूमि पर चल-फिरकर नहीं दिखा सकते। हाँ, पेड़ों पर ये अपनी कलाएँ दिखाकर अवश्य आश्चर्य चकित कर देते हैं। ये अधिकतर शाकाहारी बने रहते हैं किन्तु अन्यान्य खाद्य पदार्थों पर भी हाथ साफ करने में नहीं चूकते।

कालक्रम से मानव इन बिछुड़े हुए वनवासी वानरों और वनमानुषों को अपनी बुद्धि और कौशल से पुनः अपने निकट बुला सकता है और इनकी बुद्धिहीन शारीरिक शक्ति को बुद्धियुक्त करके एक अच्छी जीवित मशीन की भाँति इन्हें अनेक उपयोगी और कठिन कार्यों में लगा सकता है। ●

बुद्धिकौशल में मानव के सर्वाधिक निकट चिम्पान्जी

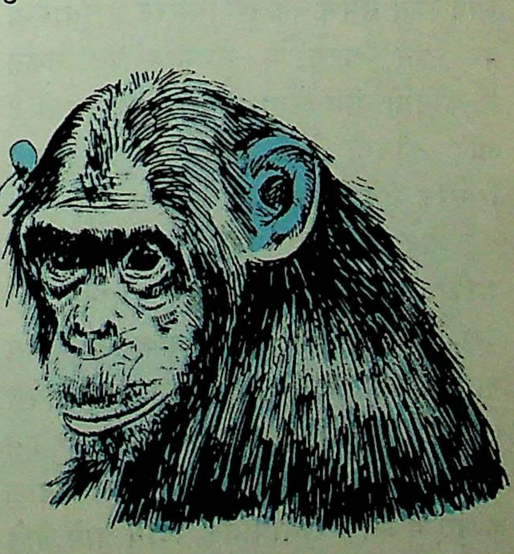

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिगरेट के बारे में इतना तो जानिये ही

भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

सिगरेट के बारे में अनेक भ्रान्तिमूलक धारणाएँ लोगों में प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि सिगरेट से मस्तिष्क को राहत मिलती है, सोचने की प्रेरणा मिलती है और कवि तथा लेखकों को रचना की प्रवृत्ति भी। इसके प्रतिकूल कुछ लोगों का खयाल है कि सिगरेट से बुद्धि कुण्ठित होती है, निर्णय करने की शक्ति मारी जाती है और स्वास्थ्य पर क्षतिकारक प्रभाव पड़ता है, गले में खराश आती है तथा फेफड़े रोगग्रसित हो जाते हैं।

इस लेख में सिगरेट पीने के प्रभाव पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है ताकि आप स्वयं समझ सकें कि सिगरेट से स्वास्थ्य पर किस तरह के कुप्रभाव पड़ सकते हैं, कौनसी बीमारियाँ उत्पन्न हो सकती हैं और कौनसी ऐसी बीमारियाँ हैं जिनसे सिगरेट पीने का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

यह जानने के लिए कि सिगरेट का हमारे शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, आइए जरा देखें कि सिगरेट के धुएँ की शक्ल में कौनसे रासायनिक पदार्थ हमारे फेफड़ों में प्रवेश करते हैं। रासायनिक विश्लेषण करने पर इस बात का पता लगाया जा सका है कि तम्बाकू के धुएँ में अनेक रासायनिक पदार्थ पाये जाते हैं जिनमें कम से कम छह निश्चित रूप से हमारे स्वास्थ्य पर विषकारी प्रभाव डाल सकते हैं। किन्तु इनमें अधिकांश तो बहुत ही कम मात्रा में मौजूद होते हैं—केवल निकोटीन और बेन्जोपाइरिन ही पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है।

निकोटीन

दिलचस्प बात तो यह है कि सिगरेट के धुएँ की निकोटीन ही सिगरेट पीने का मजा प्रदान करती है, किन्तु सर्वाधिक विषाक्त प्रभाव भी निकोटीन ही से उत्पन्न होते हैं। निकोटीन पानी की तरह पारदर्शी द्रव होता है और यह केवल तभी उत्पन्न होता है जब तम्बाकू धीरे-धीरे सुलगती है अर्थात् सिगरेट, सिगार, बीड़ी, हुक्के की तम्बाकू से ही निकोटीन मुक्त होती है, पान के साथ खायी जाने वाली तम्बाकू या सुँघनी की तम्बाकू के सेवन में निकोटीन उत्पन्न नहीं होती।

औसत तौर पर प्रति सिगरेट चन्द मिलीग्राम निकोटीन ही धुएँ के साथ उत्पन्न होती है जिसमें दो तिहाई तो हवा में विलीन हो जाती है और एक तिहाई (लगभग १·६ मिलीग्राम) भीतर मुँह और नाक में जाती है। वास्तव में कितनी निकोटीन आप अपने शरीर में जज्ब करते हैं, यह कई बातों पर निर्भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती है। यदि आप सिगरेट का धुआँ एकदम साँस के संग भीतर फेफड़े में खींच लेते हैं तो निस्सन्देह निकोटीन का विष अधिक मात्रा में आपके शरीर में प्रवेश पाता है। जो लोग सिगरेट को जरा कंजूसी के साथ पीते हैं अर्थात् उस वक्त तक सिगरेट को नहीं छोड़ते जब तक कि उसका आखिरी सिरा खत्म न हो तो उस दशा में निकोटीन अधिक मात्रा में शरीर के अन्दर पहुँचती है। या फिर ऐसे लोग जो सिगरेट पीते समय तेजी के साथ बार-बार धुआँ खींचते हैं, अधिक मात्रा में निकोटीन भी अपने शरीर के अन्दर पहुँचाते हैं।

सिगरेट में फिल्टर लगा होने पर लगभग आधी निकोटीन फिल्टर अपने में रोक लेता है। बड़े साइज की सिगरेट पीने पर निकोटीन की मात्रा दुगनी-तिगुनी हो सकती है और सिगार पीने पर तो सिगरेट की तुलना में पाँच गुनी निकोटीन आपके शरीर में पहुँचती है।

निकोटीन शरीर में प्रायः दो तरीकों से प्रवेश करती है। प्रथम फेफड़े में पहुँचकर यह शरीर में जज्ब होती है या फिर मुँह की लार में घुलकर यह आँतों में पहुँचती है और वहाँ से कोषों में चली जाती है। शरीर में पहुँचने वाली निकोटीन का लगभग १०% तो बिना आपको हानि पहुँचाए मूत्र के साथ मिलकर शरीर से बाहर निकल जाती है। किन्तु शरीर में जज्ब होने वाली निकोटीन अवश्य विभिन्न प्रकार के असर पैदा करती है। निकोटीन नौसिखुए सिगरेट पीने वाले व्यक्ति के दिल की धड़कन की रफ्तार को घटा देती है, धमनियों में सिकुड़ने पैदा करती है।

निकोटीन की केवल अल्प मात्रा मस्तिष्क को राहत प्रदान कर सकती है। मात्रा यदि अधिक हुई तो रक्तचाप में वृद्धि कर सकती है जिसमें पहले तो हृदय की धड़कन सुस्त पड़ती है, फिर धड़कन की रफ्तार बढ़ जाती है।

कैंसर रोग से धूम्रपान का सम्बन्ध : मृतक संख्या, प्रति वर्ष, प्रति लाख व्यक्ति

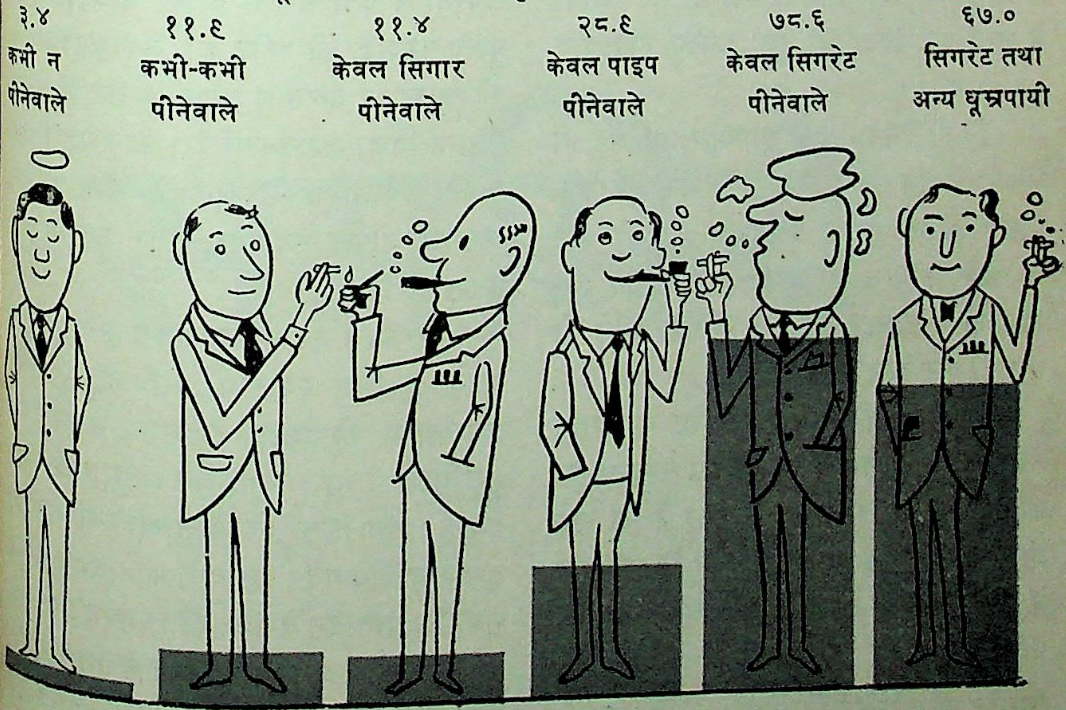

[अमरीकन कैंसर सोसाइटी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

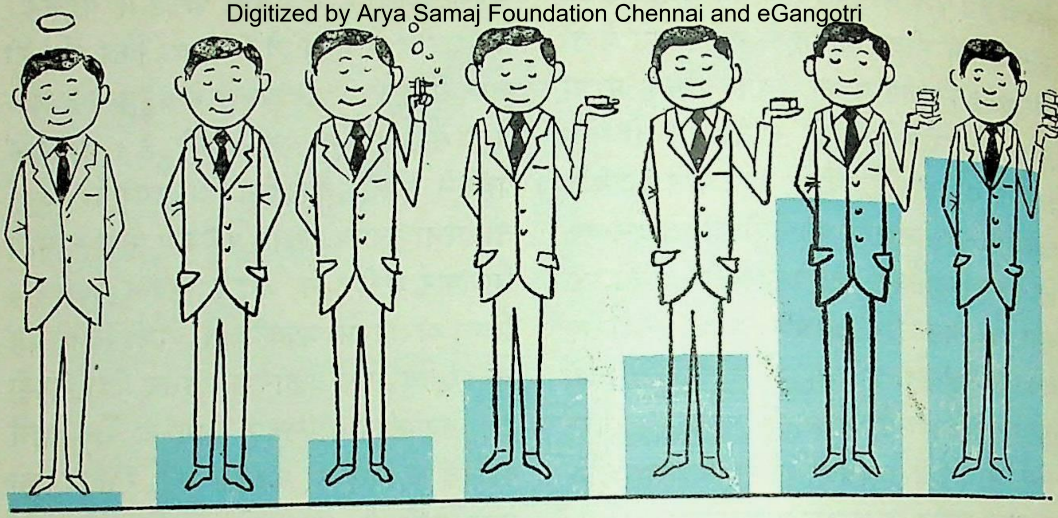

कैंसर रोग से धूम्रपान (सिगरेट) का सम्बन्ध : मृतक-संख्या, प्रति वर्ष, प्रति लाख व्यक्ति

१२·८	५६·३	४९·३	९५·२	१०७·८	२२९·२	२६४·२
कभी न पीनेवाले	नियमित पीनेवाले किन्तु अब कभी नहीं पीते;	कभी-कभी पीते हैं	रोजाना पीनेवाले आधा पैकेट	एक पैकेट	दो पैकेट	दो पैकेट से अधिक

[अमरीकन कैंसर सोसाइटी]

ऐसे वयस्क लोगों की, जो सिगरेट अधिक पीते हैं, प्रायः निकोटीन के कारण आँखों की ज्योति धुँधली पड़ जाती है। डाक्टरी परामर्श के अनुसार जब सिगरेट पीना ऐसे लोगों ने बन्द कर दिया तो पुनः इनका दृष्टिदोष दूर हो गया।

निकोटीन का एक कुप्रभाव यह भी हो सकता है कि आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक एसिड अधिक मात्रा में विमुक्त हो और पेट में फोड़े उत्पन्न हो जाएँ। इसीलिए इस बीमारी में डाक्टर सदैव ही सिगरेट पीने की मनाही कर देता है।

विशेषज्ञों के अनुसार सिगरेट के व्यसन तथा दिल की बीमारी में घनिष्ठ सम्बन्ध है। आँकड़ों के देखने से पता चलता है कि इस बीमारी से ग्रसित व्यक्तियों में दो-तिहाई लोग वे हैं जो सिगरेट बहुत अधिक मात्रा में पीते रहे हैं।

सिगरेट और कैंसर में सम्बन्ध

सिगरेट के धुएँ के साथ कोलतार सरीखा पदार्थ भी निकलता है जिसे तम्बाकू की कीट कह सकते हैं। बेन्जोपाइरिन इसी में पाया जाता है। प्रयोगशाला में किये गये अनुसंधानों से पता चलता है कि बेन्जोपाइरिन युक्त तम्बाकू की कीट का लेप चूहों आदि की त्वचा पर करने से उनके शरीर में कैंसर उत्पन्न किया जा सकता है। प्रश्न यह है कि फेफड़ों में सिगरेट के धुएँ के साथ पहुँचने वाला बेन्जोपाइरिन क्या कैंसर उत्पन्न कर सकता है?

इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त करने के लिए स्वास्थ्य अधिकारी तथा वैज्ञानिकों की ओर से समय-समय पर सुसंगिठत तथा सुनियोजित अनुसंधान किये गये हैं। इस सिलसिले में लाखों व्यक्तियों से इण्टरव्यू लिये गये। इस बात का पता लगाया गया कि प्रतिदिन वे कितनी सिगरेट पीते रहे हैं, कितने वर्षों से वे इस आदत के शिकार रहे हैं आदि-आदि। उनके दिल, फेफड़े आदि की डाक्टरी जाँच की गयी और तब संकलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँकड़ों का विस्तृत विवेचन और अध्ययन किया गया।

अमरीकन कैंसर सोसाइटी ने लगभग दो लाख व्यक्तियों का अध्ययन किया जिसमें हर तरह के व्यक्ति शामिल थे—बहुत अधिक सिगरेट पीने वाले, औसत श्रेणी के सिगरेट व्यसनी, यदाकदा एकाध सिगरेट प्रतिदिन पीने वाले, तथा वे लोग भी जिन्होंने कभी भी सिगरेट का स्वाद नहीं लिया। निष्कर्ष इस प्रकार है :

१. फेफड़े के कैंसर वाले रोगियों में ९९·५ प्रतिशत ऐसे थे जो पिछले २० वर्षों से प्रतिदिन १० से १५ सिगरेट या इससे भी अधिक पीते रहे हैं।

२. फेफड़े के कैंसर वाले रोगियों में केवल २ प्रतिशत ही ऐसे व्यक्ति थे जो सिगरेट नहीं पीते थे।

३. पाइप या सिगार पीने वाले व्यक्तियों को फेफड़े के कैंसर का खतरा सिगरेट पीने वालों के मुकाबले में बहुत कम होता है।

सिगरेट का पीना छोड़ा जा सकता है

सिगरेट पीने की आदत छुड़ाना कठिन तो है किन्तु असम्भव नहीं। दरअसल अफीम आदि के व्यसन तथा सिगरेट पीने की आदत में मौलिक अन्तर यह है कि अफीम का व्यसनी यदि अचानक अफीम का सेवन बन्द कर देता है तो उस पर अनेक शारीरिक कुप्रभाव पड़ सकते हैं जो उसके लिए अत्यन्त हानिकर साबित हो सकते हैं, किन्तु सिगरेट के लिए ऐसी बात नहीं है। अपनी इच्छा शक्ति प्रबल बना सकें तो सिगरेट का पीना आप एकदम बन्द कर सकते हैं। आरम्भ में थोड़ी मानसिक परेशानी भले ही हो किन्तु आपके स्वास्थ्य पर हानिकर प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि आपके स्वास्थ्य में निश्चित रूप से सुधार ही होगा। ●

समझिये

कि समस्या क्या है ?
विकास और सुरक्षा का बहुत निकट का सम्बन्ध है।
खेतों और कारखानों में आप जितना उत्पादन
बढ़ाएंगे देश को उससे उतनी ही अधिक ताकत मिलेगी।

सुदृढ़ रक्षा के लिए जी तोड़ मेहनत करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. नरेन्द्रमोहन बंसल

समुद्र में ज्वार-भाट के साथ उठती-गिरती लहरें समुद्र का मन्थन कर देती हैं। इसी ज्वार-भाटे पर कोटि-कोटि जन्तुओं तथा वनस्पतियों के जीवन आधारित हैं। इसी पर संसार के विभिन्न व्यापार-उद्योग और सागर यात्राएँ निर्भर रहती हैं।

अभी मनुष्य के लिए यह सम्भव नहीं हो पाया है कि वह ज्वार-भाटे का नियन्त्रण कर सके। उसे पूर्णत: सागर के नियन्त्रण में रहना पड़ता है। बन्दरगाह से दूर जहाज को इस प्रतीक्षा में खड़े ही रहना पड़ता है कि कब अनुकूल लहर आए और कब उसे किनारे लगा दे। इसी प्रकार मछुआ भी लहरों का रुख देखकर ही जाल फेंकता है। विज्ञान का बड़े से बड़ा साधन भी क्वीन मेरी जैसे विशाल जलयान को छिछले पानी अथवा दलदल में चलाकर किनारे नहीं ला सकता। यदि वह यान को तूफानी तरंगों की अवहेलना करके न्यूयार्क के बन्दरगाह पर पहुँचाने की जल्दबाजी करे तो उसे चकनाचूर होने से भी न बचा सकेगा। कितने ही बन्दरगाहों पर जहाजों को अपनी घड़ी से नहीं, ज्वार-भाटे के समयचक्र की मर्जी पर चलना पड़ता है, माल उतारना और लादना पड़ता है। यदि वे लहरों का रुख न देखें तो या तो छिछले पानी और दलदल में फँसे रह जाएँगे अथवा ज्वार की लहरें उन्हें किनारे लगने ही न देंगी।

सृष्टि के आरम्भकाल में

सूर्य और चन्द्रमा के संयुक्त आकर्षण द्वारा प्रेरित इन सागर-ज्वारों का रूप आज के रूप से कितना भिन्न रहा होगा, यह गणना द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। उन दिनों जब पृथ्वी का ही एक छोटा टुकड़ा अलग होकर पृथ्वी के उपग्रह स्वरूप, चन्द्रमा के नाम से बना तब वह नवोत्पन्न चन्द्रमा पृथ्वी के काफी निकट होने से समुद्र को उछाल-उछाल कर गजब ढाता रहा होगा। आज जो वृहत् ज्वार (spring tide) और लघुज्वार (ebb tide) के मध्य तरंगों की उछाल का अन्तर केवल २०-३० फुट का है, वह उन दिनों सैकड़ों फुट का रहा होगा। आज चन्द्रमा पृथ्वी से २।। लाख मील की दूरी पर होता हुआ भी वृहत् ज्वार के समय सागर को मथ देता है, वह उन दिनों क्या कुछ न करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा? २०० करोड़ वर्षों से भी अधिक समय बीत गया जब क्रमशः हटते-हटते चन्द्रमा इस दूरी पर पहुँचा है। साथ ही, पृथ्वी की घूर्णन गति (speed of rotation) भी कई गुना घट गयी है। आज तो पृथ्वी को अपनी धुरी पर एक चक्कर पूरा करने में २४ घण्टे लगते हैं किन्तु प्रारम्भिक अवस्था में उसे ४ ही घण्टे लगते थे; अर्थात् ४-४ घण्टे बाद ही दिन और रात। अनुमान है कि कालान्तर में निरन्तर किन्तु अति सूक्ष्म गति से घटता हुआ हमारी पृथ्वी का यह वेग आज से ५० गुना घट जाएगा; अर्थात् १२०० घण्टों (५० दिन) का एक दिन और उतनी ही लम्बी एक रात। साथ ही साथ, चन्द्रमा भी पीछे हटता-हटता पृथ्वी से इतनी दूर हो जाएगा कि जितने दिनों में पृथ्वी अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाएगी उतने ही दिनों में चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करेगा अर्थात् दिन और महीने की अवधि एक हो जाएगी। यह दूरी बढ़ने के साथ-साथ चन्द्रमा का आकर्षण इतना क्षीण हो जाएगा कि सागर-ज्वार का अस्तित्व ही लोप हो जाएगा। किन्तु यह सब कुछ अभी गणनामात्र ही है और आजकल में होनेवाला भी नहीं।

चन्द्रमा के वशीभूत, सागर

सप्त सागर-मंडल की एक बूंद ऐसी नहीं जो सूर्य-चन्द्र के इस ज्वार उठाने वाले अदृश्य किन्तु महाप्रबल आकर्षण की अधीनता न स्वीकार करती हो। इस आकर्षण के आगे लहरें उठानेवाले प्रचण्ड पवन तथा पृथ्वी का घूर्णन वेग आदि अन्य बल तो निर्बल ठहरते हैं, अतः एक प्रकार से नगण्य ही हैं। इनका प्रभाव कुछेक सौ फुट की गहराई तक ही रहता है। उससे आगे ये शक्तियाँ अशक्त हो जाती हैं। उधर चन्द्रमा का आकर्षण तो सागर-जल को ऊपर-तले ही कर देता है। ज्वार की अवस्था में सागर की उत्ताल तरंगें किसी भी सामान्य तट पर औसतन करोड़ों टन जल टकरा देती हैं।

प्रश्न हो सकता है कि समुद्र क्यों इस प्रकार उद्वेलित हो उठता है? सो भी नियत तिथि और नियत ही समय पर? इसके समाधान के लिए यह पहले ही समझ लेना आवश्यक है कि सृष्टि का कण-कण एक-दूसरे को आकर्षित किये रहता है। भूमण्डल के समस्त जल की एक-एक बूंद व्योम-मण्डल के एक-एक तारे द्वारा आकर्षित होती है। यह दूसरी बात है कि तारों की अत्यधिक दूरी उनके आकर्षण को नगण्य कर देती है। सागर-जल के आकर्षण का समस्त उत्तरदायित्व सूर्य और चन्द्रमा पर ही है। जो व्यक्ति समुद्र किनारे रहते हैं वे प्रति अमावस्या और पूर्णिमा को सागर की हालत देखते हुए जानते हैं कि सूर्य से भी अधिक आकर्षण चन्द्रमा का है। ज्यों-ज्यों प्रतिदिन चन्द्रमा लगभग ५० मिनट विलम्ब से उदय होता है, त्यों-त्यों सागर का ज्वार भी अपना समयचक्र मिलाये रखता है। इन दो तिथियों पर पृथ्वी और चन्द्रमा सूर्य की ठीक सीध में रहते हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा का सम्मिलित आकर्षण पृथ्वी पर पड़ता है। तभी सागर में वृहत् ज्वार उठता है। इसके अतिरिक्त, अर्द्धचन्द्र की दोनों तिथियों पर सूर्य और पृथ्वी की सीध से चन्द्रमा समकोणीय अवस्था में रहता है। तब दोनों का आकर्षण परस्पर विरोधी होने के कारण विभाजित हो जाता है। उस अवस्था में लघु ज्वार ही उठता है।

एक शंका यह भी हो सकती है कि सूर्य के मुकाबले चन्द्रमा एक राई के दाने के बराबर है फिर भी इसका आकर्षण सूर्य से अधिक क्यों है? उत्तर स्पष्ट है कि अन्तर्ग्रही आकर्षण में आकार का बड़ा होना उतना महत्त्व नहीं रखता, जितना कि मध्य की दूरी कम से कम होना। अतः चन्द्रमा पृथ्वी के निकटतम होने के नाते सूर्य से अनेक गुना छोटा होते हुए भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

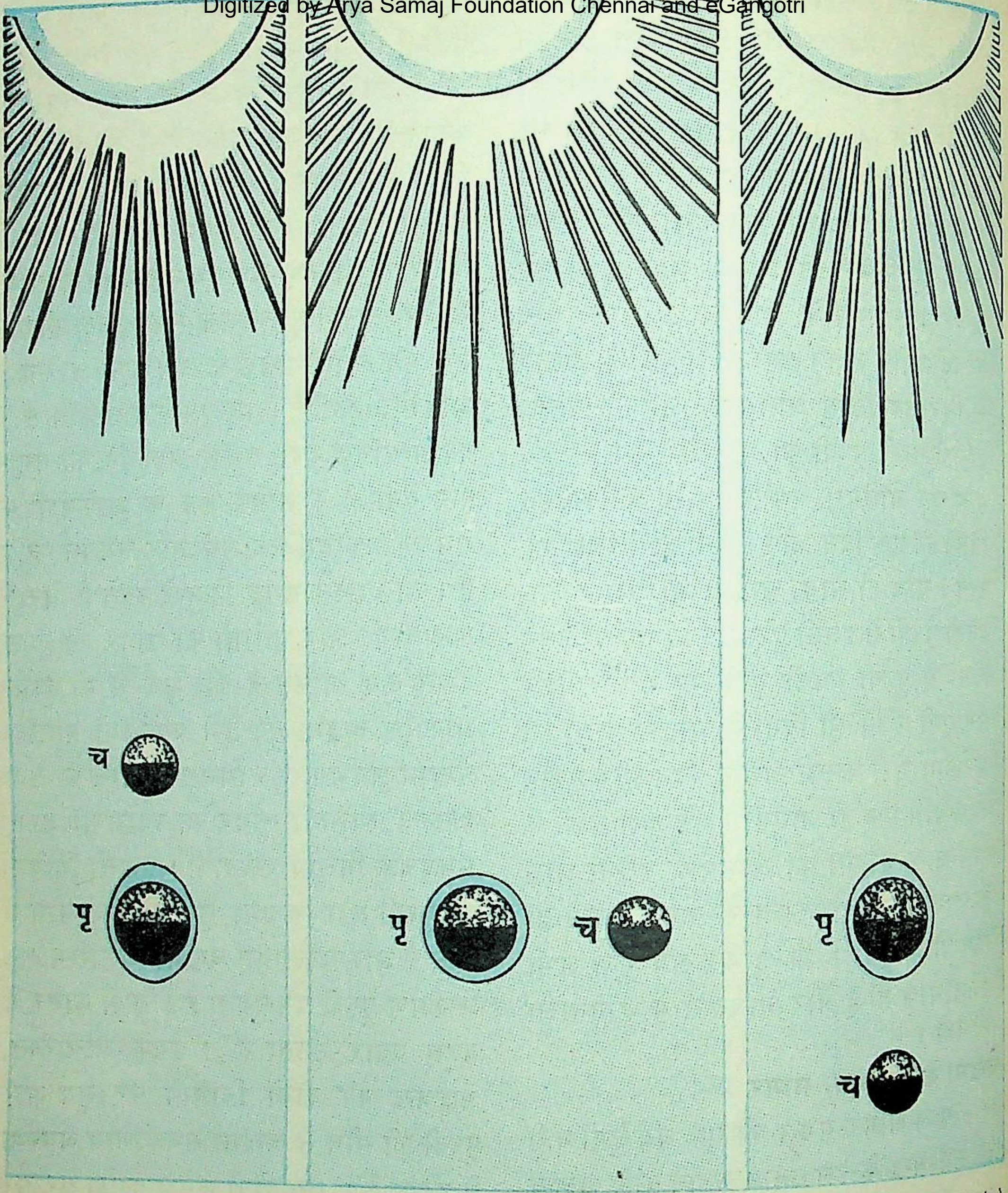

कभी आकर्षण-बल को द्विगुणित करके तो कभी परस्पर ही न्यून भी करके सूर्य और चन्द्र (च), पृथ्वी (पृ) के जल भाग का भाग्यनिर्धारण करते हैं

अपेक्षाकृत अत्यधिक बल से सागरजल को खींचता है। यह आकर्षण पृथ्वी के बाह्य भाग पर ही पड़ता होने से यह सहज अनुमान लगाना गलत हो जाएगा कि पृथ्वी के समस्त स्थलों पर एक समान ही आकर्षण पड़ता होगा। विचित्रता तो यह है कि कुछ ही मील दूर के सागर-तटों पर भी ज्वार के वेग में काफी अन्तर रहता है। ज्वार उठने के पहले और मध्य की अवस्था में तरंगों की ऊँचाई का अन्तर कहीं तो फुट-दो फुट ही रहता है, और कहीं २०-३० फुट का। यह अन्तर सागरतल की ऊँची-नीची ढलान पर आधारित रहता है। सागरतल की असमानता के कारण ज्वार के क्रम में भी अन्तर पड़ जाता है फलतः कहीं तो दिन में दो बार और कहीं एक ही बार ज्वार आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चन्द्रमा हटता जा रहा है

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ऊपर कहा जा चुका है कि सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक चन्द्रमा पृथ्वी से निरन्तर हटता जा रहा है। यदि हटता न होता और उतना ही निकट होता तो सागर-ज्वार का पानी पृथ्वी पर मनुष्य और जन्तु-जीवन तो क्या, किसी भी वस्तु को टिकने न देता। यह तथ्य कम मनोरंजक नहीं कि चन्द्रमा जिस ज्वार को उत्पन्न करता है, वही ज्वार उसे पृथ्वी से दूर-दूर किये रहता है। इसका रहस्य इस प्रकार है।

यह तो स्पष्ट है कि तीव्र वेग से घूमती हुई पृथ्वी चन्द्रमा को अपनी ओर आकर्षित किये रहती है। ज्वार के साथ खिंचता हुआ सागर-जल पृथ्वी की गति को निश्चय ही मन्द कर देता है। पृथ्वी की गति मन्द होते ही इसका गुरुत्वाकर्षण-बल घट जाने से चन्द्रमा इसकी कैद से यथाकिंचित मुक्त होकर दूर खिसकता है। ज्वार के उतरते ही भाटे की अवस्था में चन्द्रमा पुनः घाटे में आ जाता है और पृथ्वी अपनी स्वाभाविक गति पुनः प्राप्त करते ही चन्द्रमा को अधिक निकल भागने से रोक लेती है।

चन्द्रमा के इस प्रकार दूर हटते जाने से पृथ्वी के गिर्द उसकी परिक्रमा के पथ में और अन्ततः समय में भी दीर्घता आ जाती है। समय का यह अन्तर इतना सूक्ष्म होता है कि हमारी सामान्य घड़ियों की तो पकड़ में आ ही नहीं सकता। हाँ, आधुनिकतम अणुचालित घड़ियाँ अवश्य यह अन्तर प्रदर्शित करने में समर्थ हैं। इन्हीं की सहायता से अनुमान लगाया गया है कि प्राचीन मिस्रवासियों ने जिस काल में संसार-प्रसिद्ध पिरामिड खड़े किये थे, तब की अपेक्षा आज हमारा दिन कई सेकण्ड बढ़ चुका है।

नौकारोहण के भय-स्थान

ज्वार के समय जहाजों तथा नौकाओं का समुद्र के बीच में होना वैसे तो भयस्पद है ही, किन्तु वह भय तब और भी बढ़ जाता है जब लहरों के बीच भँवरें पड़ने लगती हैं। इन भँवरों में एक बार फँसने पर निकलना असम्भव हो जाता है। एक चिलम की तरह ऊपर से चौड़ी और नीचे से सँकरी होती-होती यह भँवर अनन्त बढ़ती ही जाती है और एक भँवर समाप्त होने से पहले तीन नयी और उत्पन्न कर जाती है। कुशल नाविकों को यदि २-३ मिनट का समय मिल जाए तो वे ऐसी भँवर से निकलना भी जानते हैं। इसके लिए वे अपना डाँड़ अथवा अन्य कोई भारी तथा लम्बी-चौड़ी वस्तु भँवर में फेंकते हैं जिससे पानी का क्रम टूट जाता है और भँवर कुछ देर के लिए अदृश्य हो जाती है।

भँवर के अतिरिक्त एक दीवार के रूप में ज्वार-भित्ति (bore) का बनना भी बड़ा भयस्पद रहता है। इसका बनना ऐसी नदी के मुहाने पर सम्भव होता है जहाँ ज्वार तथा भाटे की लहरों में ८-१० फुट का अन्तर हो। कभी-कभी दो-तीन बड़ी लहरें एक साथ मिल कर लम्बी, ऊँची दीवार के रूप में समुद्र से उठ कर नदी के मुहाने से उलटे नदी की ओर बढ़ती हैं। एकबारगी तो उनकी यह दीवार ज्वार के वेग को रोके रहती है किन्तु शीघ्र ही पीछे आनेवाली लहरों से मिलकर स्वयं एक बाढ़ के रूप में नदी पर चढ़ दौड़ती है।

संसार की विशालतम नदी अमेजन में समय-समय परआनेवाली ऐसी ज्वार भित्तियाँ इस बात के लिए प्रसिद्ध हैं कि वे नदी में अन्दर ही अन्दर २०० मील से भी अधिक तक चढ़ आती हैं। इसी प्रकार सीयेन्तांग नदी की ज्वारभित्ति इसलिए प्रसिद्ध है कि उस नदी का समस्त नौकारोहण उसी पर आधारित है। वह भित्ति १०-११ फुट ऊँची और १२-१३ नाट (knots) की गति से आती है। वृहत् ज्वार के अवसर पर तो वह भित्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

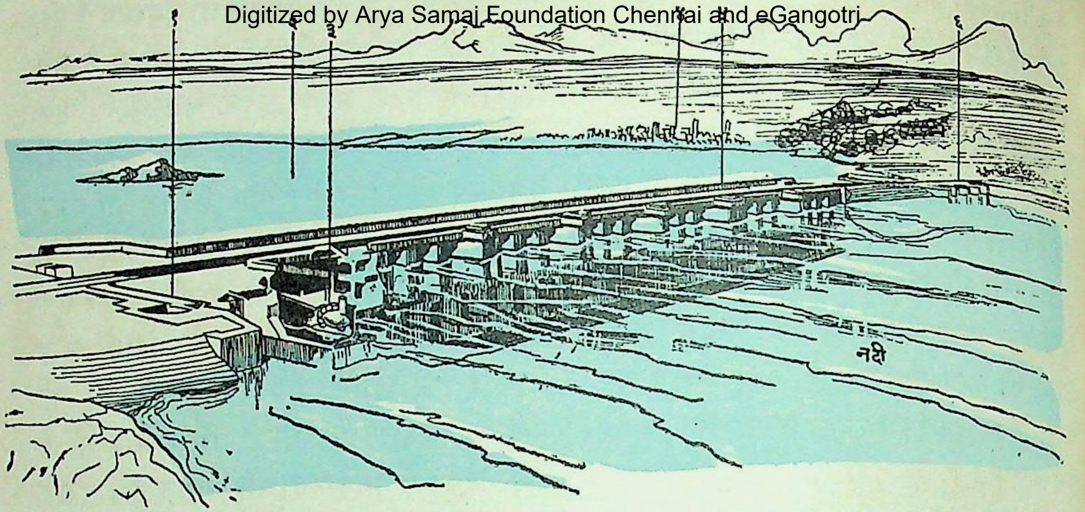

ज्वार को रोकने तथा उससे विद्युतोत्पादन करने का सफल प्रयोग फ्रान्स के सेन्ट मेलो स्थान पर किया गया है। आते और जाते ज्वार से द्विमुखी टर्बाइनों द्वारा २४ हाइड्रोइलेक्ट्रिक इंजन गतिमान होकर लगभग ५० करोड़ किलोवाट विद्युत प्रति मास उत्पादित कर रहे हैं। १. जलपाश; २. समुद्र ; ३. पम्प टर्बाइन; ४. सेन्ट मेलो ; ५. कन्ट्रोल रूम ; ६. जल-निष्कासन कपाट

२५ फुट तक ऊँची हो जाती है। पूर्व काल में उक्त नदी के तटवासी इसे नदी का प्रकोप समझकर बलि चढ़ाया करते थे।

ज्वार-प्रभावित समुद्री जन्तु

मानव के तो विविध व्यापार ज्वार-भाटे से प्रभावित रहते ही हैं, कुछेक समुद्री जन्तु भी विलक्षण प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। ज्वार-भाटे के अचूक तथा निर्धारित समय-कुसमय का उनका ज्ञान तथा उस पर आधारित उनकी जीवन क्रियाएँ, विशेषतः जनन-क्रिया तो आश्चर्य-जनक ही है। शंख, सीपियों तथा घोंघे आदि नन्हें जन्तुओं का तो जीना-मरना ही ज्वार-भाटे पर आश्रित है। जिन जन्तुओं के लिए सागर की गहराइयों में रहते हुए भोजन की तलाश में ऊपरी सतह के निकट आना असम्भव है, उन तक भोजन ये ज्वार ही घसीट ले जाते हैं।

इन जन्तुओं ने अपना ऋतुकाल (mating period) ज्वार के चढ़ने-उतरने के साथ इस खूबी से बिठा रखा है कि दाँतों तले अँगुली दबाकर रह जाना पड़ता है। सी-अर्चिन (sea-urchin) नामक कीड़े की तो नियमितता इतनी विलक्षण है कि जब भी वह सतह पर दिखायी पड़े, यह कहा जा सकता है कि वह किस महीने का, कौन दिन होगा और उस समय दिन का कौनसा प्रहर होगा।

प्रशान्त महासागर में सेमोओ द्वीप के निकट पाये जाने वाले पैलोलो (palolo) नामक कीट की जीवनक्रियाएँ और भी मनोरंजक हैं। वर्ष में दो बार, अक्टूबर तथा नवम्बर के अर्द्धचन्द्र-दिनों में अर्थात् लघुज्वार की अवस्था में यह कीड़ा जल में छिपे चट्टानों के अपने घर से निकलकर सतह पर तैर आता है। सतह पर आते समय अपना आधा शरीर वहीं चट्टान पर छोड़ आता है। आने के दूसरे दिन तक इनका समूह इतने अधिक अण्डे दे देता है कि एक बार तो पानी की सतह का रंग ही बदल जाता है। अपना काम समाप्त करके वह आधा अंग पुनः अपने घर जाकर अर्द्धांग से मिल जाता है।

केलीफोर्निया के समुद्री तट पर पायी जाने वाली ग्रुनियन (grunion) मछली तो और भी विचित्र है। केवल हाथ भर की और चाँदी सी चमकती यह मछली न केवल प्रति दिन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये हैं ग्रुनियन (grunions) मछलियाँ जो ज्वार और भाटे का अचूक हिसाब रखकर जननक्रिया सम्पन्न करती हैं

का ठपहा स्पर्श अण्डों की झिल्ली को चटखा देता है और नवजात मछलियाँ लौटती लहरों के साथ अपने नये घर बनाने के लिए समुद्र में समा जाती हैं।

प्रकृतिकी ऐसी ही विलक्षणता *Convoluta ros coffensis* नामक सपाटकृमि (flatworm) में भी पायी जाती है। यह समुद्री जन्तु नन्हीं शैवाल वनस्पतियों से नाता जोड़ लेता है। वह वनस्पति अपना हरा रंग और अन्य पोषक अंग इसे अर्पण कर देती है।

दोनों ज्वार-भाटे के समय का घड़ी-पल-शुद्ध ज्ञान रखती है, बल्कि यह भी जानती है कि कितने दूर के किनारे पर ज्वार का पानी कम चढ़ेगा या अधिक। इसी आधार पर वे अपनी जनन-क्रिया सम्पन्न करती हैं।

मार्च से अगस्त के मध्य लघु-ज्वार की लहरों के साथ ये मछलियाँ किनारे पर आना प्रारम्भ करती हैं। एक लहर इन्हें किनारे ला पटकती है। वहाँ वे चन्दा की चाँदनी में चमकती हुई चन्द घड़ियाँ गुजारती हैं और दूसरी लौटने वाली लहर में कूद-कूदकर पुनः विलीन हो जाती हैं। उसके लगभग एक घण्टे पश्चात् पुनः इनका नया जत्था किनारे आता है और वह भी कुछ देर ठहरकर दूसरी लौटती लहर से लौट जाता है। इसका रहस्य यह है कि पहला जत्था केवल मादाओं का था जो अण्डे देकर चली गयीं और दूसरा जत्था केवल नरों का था जो उन्हें निषेचित करके चले गये। वे इस हिसाब से और इतने सुरक्षित फासले पर अण्डे छोड़ जाते हैं कि लघु ज्वार की लहरें वहाँ तक नहीं पहुँच पातीं और वे रेत में पड़े-पड़े तैयार होते रहते हैं। उन्हें तैयार होने के लिए भी केवल १४ दिन का समय चाहिए। अतः दो सप्ताह बाद ही वृहत् ज्वार की पहली लहर

अब प्रकाश-संश्लेषण सम्पन्न करने के लिए यह कीट प्रत्येक लघुज्वार की लहर के साथ किनारे आ जाता है। वहाँ खुली धूप में पड़ा रहकर प्रकाश-संश्लेषण द्वारा शरीर-पोषण के लिए स्टार्च व शुगर बनाने में सहयोग देता है। पुनः पानी में लौटकर अपना निर्मित भोजन उस वनस्पति को दे देता है। ऐसी सपाटकृमियों के एक जत्थे को जब मीनालयों में रखकर अध्ययन किया गया तो पाया गया कि मीनालय कोई समुद्र न होते हुए भी और फलतः उसमें ज्वार-भाटे का कोई प्रश्न न होते हुए भी वे कृमि बराबर दिन में दो बार (ज्वार के हिसाब से ही) सतह के ऊपर तिर आते थे और पुनः तल में उतर भी जाते थे।

कौन इन निरीह जन्तुओं को ज्वार-भाटे की वैज्ञानिकता, लहरों का समयचक्र और चन्द्रमा की कलाओं का ज्ञान कराता होगा; जिसके आधार पर ये इतनी अचूक प्रतिक्रियाएँ प्रदर्शित करते हैं; और जिन एकाकी स्थलों पर समुद्री जन्तुओं को खाने के लिए कुछ भी उपलब्ध नहीं, उन्हें निर्धारित समयान्तर से किस प्रकार ये सागर-तरंगें शिकार तथा भोजन आदि पहुँचाती रहती हैं, यह विज्ञान के लिए आज भी एक अबूझ पहेली है, गूढ़ गुत्थी है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च ताप के दो महान स्रोत

विद्युदणु-रश्मि तथा प्लाज्मा टार्च

अशोककुमार चौबे

अपने दैनिक उपयोग तथा उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए हमें उच्च ताप की आवश्यकता पड़ती है और उसकी पूर्ति हम विभिन्न विधियों द्वारा कर लेते हैं। यहाँ दो आधुनिकतम विधियों का परिचय दिया जा रहा है जिनके द्वारा हम अति सुगमता से उच्च ताप प्राप्त कर सकते हैं।

व्यापारिक क्षेत्र में विभिन्न धातुओं को जोड़ने के लिए हमें उच्च ताप की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक नवीन संयोजनकारी (welding) विधियों में विद्युदणु-रश्मि तथा प्लाज्मा टार्च द्वारा संयोजन दो बहुत ही अच्छी विधियाँ हैं जिनमें सरलता एवं मित-व्ययिता से उच्च ताप प्राप्त किया जा सकता है।

विद्युदणु-रश्मि द्वारा संयोजन पर आजकल अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इस विधि का प्रयोग प्रतिक्रियाशील (reactionary) और भुजायकीय (refractory) दोनों ही प्रकार की धातुओं के लिए तथा स्टेनलेस स्टील की शलाकाओं के संयोजन के लिए सुगमता से किया जा सकता है।

आधारभूत सिद्धान्त—यदि एक शून्य-कक्ष में दो विद्युत-ध्रुव लगा दिये जाएँ और उन पर एक विद्युत शक्य (potential) लगा दिया जाए तो उन ध्रुवों के बीच प्रवाहित होने वाली विद्युदणु-रश्मि का वेग दोनों ध्रुवों के बीच के शक्य पर निर्भर रहता है। जितना ही अधिक विद्युत विभव का प्रयोग किया जाएगा, विद्युदणु-रश्मि का वेग भी उतना ही अधिक हो जाएगा। विद्युदणु-रश्मियों की तीव्र गति होने के लिए कक्ष में उच्चस्तरीय शून्य होना अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि यदि कक्ष में गैस या वायु उपस्थित होगी तो विद्युदणु गैस-अणुओं से संयोग करने के पश्चात् उसे आवेशित कर देंगे तथा विद्युदणुओं की गति कम हो जाएगी। इस प्रकार प्राप्त उच्च शक्तिशाली विद्युदणु-रश्मि की गतिज ऊर्जा शत-प्रतिशतक्षमता सहित ताप-शक्ति में बदली जा सकती है। यद्यपि विद्युदणु की मात्रा बहुत कम होती है लेकिन इस प्रकार प्राप्त विद्युदणु-रश्मि की गतिज ऊर्जा बहुत अधिक होती है क्योंकि विद्युत शक्य को अधिक करके उसकी गति बढ़ायी जा सकती है। धातुओं को जोड़ने आदि के लिए प्राप्त ताप विद्युदणु-रश्मि के घनत्व पर भी निर्भर रहता है।

विद्युदणु-रश्मि प्राप्त करने के उपकरण दो प्रकार के हैं। प्रथम उपकरण में जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातुओं को जोड़ना होता है, उन्हीं धातुओं द्वारा रश्मि का वेग-वर्धन किया जाता है, अर्थात वे ही धातुएँ धन ध्रुव का भी कार्य करती हैं। द्वितीय प्रकार के उपकरण में अन्य धातु के ध्रुवों द्वारा रश्मि का वेग-वर्धन किया जाता है तथा प्रायोगिक धातुओं को उपकरण के बाहर रखकर प्रयोग किया जाता है। द्वितीय प्रकार के उपकरण में धन द्वार में एक छोटा-सा छिद्र कर दिया जाता है और विद्युदणु-रश्मि उस छिद्र में से प्रायोगिक धातुओं पर डाली जाती है। आधुनिक एवं संशोधित द्वितीय प्रकार के उपकरण में विद्युदणु-रश्मि का नाभिकरण (focussing) विद्युत्स्थैतिकी या विद्युच्चुम्बकीय वीक्षों (electrostatic or electromagnetic lenses) द्वारा किया जाता है। नाभिकरण की द्वितीय विधि का प्रयोग अधिक किया जाता है और रश्मियों को ०.००२ इंच व्यास के गोले तक केन्द्रित किया जाता है।

उपकरण—उपकरणों में मुख्यतः चार भाग होते हैं: १. शून्य कक्ष तथा उससे सम्बन्धित सामग्री, २. विद्युदणु शतघ्नी (electron gun), ३. उच्च विद्युत शक्य का साधन (high D.C. voltage), ४. प्रायोगिक धातुओं को शून्य कक्ष में ले जाने वाला एक स्वचालित यन्त्र।

धात्वीय टुकड़े संयोजन के हेतु शून्य कक्ष में $१०^{-४}$ मि. मी. पारे के स्तम्भ के दबाव तक शून्य कर लेते हैं। सामान्यतः दो प्रकार के विद्युत शक्ति के साधन काम में लाये जाते हैं—१. जिसमें उच्च विद्युत विभव (५०-१५० किलो वोल्ट्स या और ज्यादा) का प्रयोग किया जाता है तथा २. जिसमें निम्न विद्युत विभव (५-५० कि.वो.) का प्रयोग किया जाता है। उच्च विद्युत शक्य वाली विधि सर्वप्रथम यूरोपीय देशों में प्रयुक्त की गयी थी। संयुक्त राज्य अमरीका में कम विद्युत शक्य वाली विधि का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि कम विद्युत विभव प्रयोग करने से रश्मियों की गति कम होती है और जिस समय वह धातु के टुकड़े पर टकराती है, एक्स-किरणों के बनने का भय कम हो जाता है।

विद्युदणु-रश्मि द्वारा संयोजन की विशेषताएँ—इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि इसके द्वारा बहुत मोटी पट्टिकाओं की भी वेल्डिंग की जा सकती है। उदाहरणार्थ यदि अन्य विधियों द्वारा एक इंच मोटी तथा दो इंच चौड़ी शलाकाओं की वेल्डिंग की जा सकती है तो इस विधि द्वारा २० इंच मोटी तथा एक इंच चौड़ी पट्टिकाओं की वेल्डिंग आसानी से की जा सकती है। विद्युदणु-रश्मियाँ अधिक ऊर्जा के कारण अधिक गहराई तक धातुओं में प्रवेश कर जाती हैं और उन्हें

प्रथम उपकरण—**१. विद्युदणु-रश्मि ; २. शील्डिंग पट्टी ; ३. तन्तु शक्ति प्रदायक ; ४. वेग-वर्धन हेतु विद्युत-शक्य ; ५. नाभि-केन्द्र ; ६. प्रायोगिक धातु**

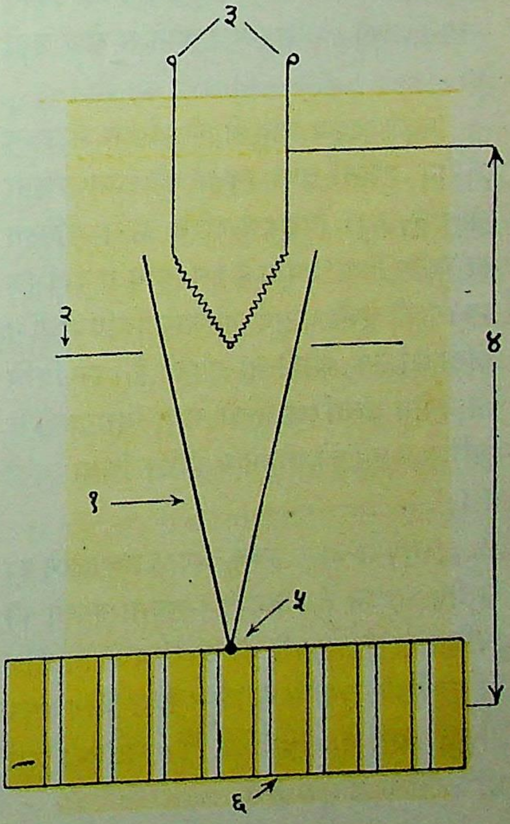

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोड़ सकती हैं। इस विधि द्वारा जोड़ी गयी पट्टिकाएँ शीघ्र ठंडी भी हो जाती हैं क्योंकि ये रश्मियाँ बहुत ही संकुचित केन्द्र पर केन्द्रित होती हैं जिससे धातुओं का अन्य भाग गर्म नहीं हो पाता। इस विधि में धातुओं को एक शून्य कक्ष में, जिसमें वायु-दाब पारे के $१०^{-४}$ मि.मी. स्तम्भ के बराबर होता है, जोड़ा जाता है। फलतः प्रायोगिक धातुएँ अधिक शुद्ध वातावरण के सम्पर्क में रहती हैं और उनकी अशुद्धता वाष्प रूप में निकल जाने से वे अधिक शुद्ध हो जाती हैं।

जब विद्युदणु-रश्मि धातु के केन्द्र पर टकराती है तब एक्स-किरणें भी उत्पन्न होती हैं जो मनुष्य के लिए हानिकारक होती हैं। एक्स-किरणों की शक्ति ध्रुवों पर लगाये गये विद्युत विभव पर निर्भर रहती है। यदि विद्युत विभव ४० कि. वो. से अधिक हो तो एक्स-किरणों के बनने का भय रहता है और काम करते समय अपनी सुरक्षा के लिए शीशा धातु की पट्टिकाओं का प्रयोग जरूरी है। ये पट्टिकाएँ एक्स-किरणों को आर-पार जाने से रोक लेती हैं।

जहाँ विशेष धातुओं को जोड़ने में उच्च स्तरीय शुद्धता तथा दृढ़ता की आवश्यकता होती है, वहाँ विद्युदणु-रश्मि द्वारा वेल्डिंग का प्रयोग किया जाता है इस विधि से दो भिन्न प्रकार की ऐसी धातुएँ जो अन्य विधियों से न जोड़ी जा सकें, जोड़ी जा सकती हैं। इस विधि का प्रयोग अन्तरिक्ष-यानों तथा मिसायलों के विभिन्न भागों को जोड़ने में अधिक किया जाता है।

प्लाज्मा-टार्च उच्च ताप प्राप्त करने का द्वितीय साधन है। यद्यपि प्लाज्मा बनाने की विधियाँ इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही ज्ञात हो चुकी थीं, तथापि प्लाज्मा के उपयोग इधर ही कुछ वर्षों में अधिक बढ़े हैं। प्लाज्मा टार्च भी उन्हीं में से एक है।

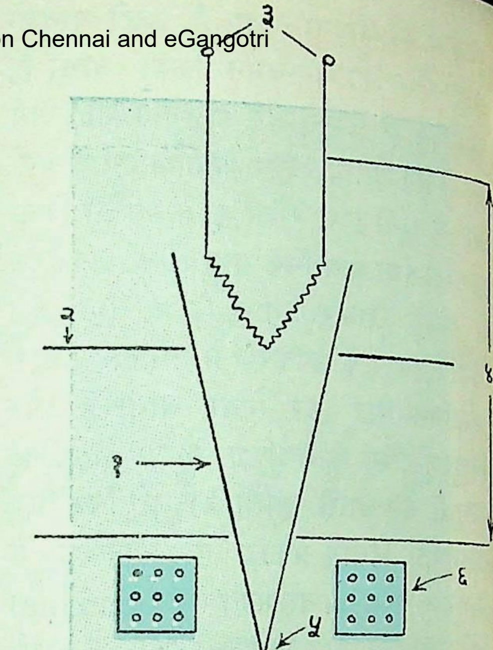

द्वितीय उपकरण—१. विद्युदणु-रश्मि; २. शील्डिंग पट्टी; ३. तन्तु शक्ति प्रदायक; ४. विद्युत-शक्य; ५. नाभि-केन्द्र; ६. विद्युच्चुम्बकीय वीक्ष्य; ७. प्रायोगिक धातु

प्लाज्मा-टार्च में गैस को एक उच्च ताप वाले विद्युत चाप (electric arc) पर प्रभावित किया जाता है जिससे वह गैस १५०००° से ३००००°F तक गर्म हो जाती है। यह ताप आक्सी-ज्वालाओं से प्राप्त ताप से कहीं अधिक है। उच्च ताप प्राप्त करने के लिए विद्युत शक्ति का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए दो प्रकार के उपकरण काम में लाये जा सकते हैं। प्रथम प्रकार में विद्युदणु-रश्मि की भाँति विद्युत चाप के धन ध्रुव का काम वही धातु करती है जिसे जोड़ना या काटना हो। इस प्रकार के विद्युत चाप को परिवर्तित चाप (transferred arc) कहते हैं। द्वितीय प्रकार में विद्युत चक्र टार्च के भीतर ही पूरा कर दिया जाता है और स्वतन्त्र प्लाज्मा की धारा एक फव्वारे की भाँति प्रायोगिक धातु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर डाली जाती है। इसे अस्थानान्तरित ताप (non-transferred arc) कहते हैं। द्वितीय विधि कुचालक पदार्थों को गर्म करने में, वायुसुरंगों के लिए गर्म गैसें बनाने में, रासायनिक संश्लेषण में तथा उन धातुओं को जोड़ने में जिनका सीधा सम्पर्क विद्युत चाप से नहीं किया जा सकता, प्रयुक्त की जाती है। प्रथम विधि में द्वितीय विधि की अपेक्षा धातु को अधिक ताप प्राप्त होता है, क्योंकि धातु का सीधा सम्पर्क विद्युत-चाप से होता है। इसलिए वह विधि धातुओं को काटने तथा जोड़ने में अधिक सरलता से काम आती है। यदि प्लाज्मा की धारा का अध्ययन विभिन्न जातियों पर करना हो तो प्लाज्मा की धारा की गति बढ़ायी या कम भी की जा सकती है। कम वेग पर चलने वाली प्लाज्मा की धारा एक पतली धातु की चादर की भाँति प्राप्त की जा सकती है जिसे लेमिनार ज्वाला (laminar flame) कहते हैं।

प्लाज्मा टार्च के कुछ महत्त्वपूर्ण उपयोग निम्न भाँति हैं—अपरिवर्तित प्लाज्मा-ज्वाला का प्रयोग बर्तनों तथा काँच के सामान को चमकाने में तथा काँच को रेशों में बदले बगैर ही उसमें छेद करने के लिए किया जाता है। यह किसी भी गलनशील धातु को गलाने में तथा धातुओं के चूरों को इकट्ठा करके उनके गोले बनाने में भी काम आती है—जैसे यूरेनियम आक्साइड, कार्बाइड और बोरन कार्बाइड आदि। इसमें ऑरगन आदि अक्रियाशील गैसें भी प्रयुक्त की जा सकती हैं। ऑरगन मुख्यत: यूरेनिम, बेरीलियम, एल्यूमिनियम आदि धातुओं को पिघलाकर उनके गोले बनाने के काम आती है। इस प्रकार बनाये गये गोलों का घनत्व अधिक होता है और उन गोलों का आणविक भट्ठियों तथा राकेट आदि में उपयोग किया जाता है। आधुनिक प्लाज्मा टार्च में और भी प्रगति की गयी है। इनमें प्लाज्मा बनाने के लिए वायु का अधिक दाब पर उपयोग किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त उच्च ताप में किया गया अधिक दाब की वायु का व्यय आक्सी-ज्वालाओं की अपेक्षा बहुत कम होता है।

वायु-सुरंगों के लिए गैसें गर्म करने तथा मिसायलों के विभिन्न भाग जोड़ने में प्लाज्मा टार्च का प्रयोग बहुत ही सफल सिद्ध हुआ है। प्राकृतिक गैसों से ऐसीटिलीन बनाने में भी प्लाज्मा विधि सफल रही है। परिवर्तित प्लाज्मा टार्च का प्रयोग धातुओं को काटने में भी किया जाता है। ये टार्चें स्टेनलेस तथा नरम स्टील को काटने में बहुत ही सफल रही हैं। इनकी कार्य विधि आक्सी-ज्वालाओं की अपेक्षा दस गुनी सस्ती पड़ती है। धातुओं को जोड़ने में प्लाज्मा-ज्वाला का प्रयोग किया जाता है। इस कार्य के लिए अक्रियाशील गैसों वाली प्लाज्मा टार्चें अधिक उचित रहती हैं, क्योंकि उनसे धातुओं का आक्सीकरण नहीं होता जो आक्सी-ऐसीटिलीन-ज्वाला के साथ हो जाता है। प्लाज्मा टार्च से जोड़ी जाने वाली धातुएँ अधिक जल्दी जम जाती हैं जबकि अन्य विधियों में अधिक समय लगता है।

अन्तरिक्ष में राकेट यान दागने के लिए इलेक्ट्रोथर्मल यन्त्र में प्लाज्मा विधि का प्रयोग किया जाता है। स्पष्ट है कि विद्युदणु-रश्मि तथा प्लाज्मा टार्च आधुनिक उच्च ताप प्राप्त करने के साधनों में सर्वश्रेष्ठ हैं। ●

एक में सात

केवल १० इंच लम्बा और ५ औंस वजन का एक ऐसा औजार तैयार किया गया है जो एक साथ सात औजारों का काम देता है उसी से आरी का काम लीजिए, हथौड़ा चलाइए, जम्बूर की तरह कील खींच लीजिए, २-३ माप के छोटे-बड़े पेचकस का काम लीजिए और ३-४ तरह के बरमे के रूप में जहाँ चाहें सूराख भी कर लीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का बहुरोग निरोधक वृक्ष नीम

दिनेश चौहान

जिस प्रकार मनुष्यों की ख्याति गुणों पर आधारित है, उसी प्रकार वनस्पतियाँ अपने सद्‌गुणों के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए हैं। ऐसी वनस्पतियों में सबसे अधिक सामान्य और परिचित नीम है। इसके नाम और गुणों से बालक-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण तथा नगरवासी सभी भलीभाँति परिचित हैं। अपने गुणों के प्रकाश से इस वनस्पति ने संसार भर को वैदिक काल से आज तक जगमगाया है। ओषधि विज्ञान को भी भारत की यह एक बहुमूल्य देन है जो केप कोमोरिन (Cape Comorin) से हिमालय पर्वत तक सर्वत्र उपलब्ध है।

वैज्ञानिक शब्दावली के अनुसार नीम को मीलिया इण्डिका (*melia indica*) कहते हैं जो मीलिएसी कुल (*meliaceae* family) का मुख्य सदस्य है। भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में निम्ब, अरिष्टा, लिम्बा, वेपा, मारगोसा आदि शब्द नीम के ही पर्याय है। नीम की लगभग तीस प्रजातियाँ (species) एशिया के विभिन्न भू-भागों में फैली हुई हैं।

नीम की गणना विशाल वृक्षों में की जाती है। इसकी ऊँचाई ४०-६० फुट होती है। इसका तना चौड़ा और मोटा होता है जिसके ऊपरी भाग से अनेक लम्बी-पतली शाखाएँ निकलती हैं। नीम के तने पर काफी मोटी छाल चढ़ी रहती है जिसके सूखने पर अनेक आड़ी-तिरछी दरारें पड़ जाती हैं। नयी निकलने वाली शाखाएँ रोमहीन और चिकनी होती हैं। नीम की लकड़ी कठोर, रंगीन तथा गंधयुक्त होती है। पत्तियाँ संयुक्त, असमपक्षवत तथा एकान्तर होती हैं तथा इनकी लम्बाई ९ से १५ इंच तक होती है। प्रत्येक पत्ती से ८ से १७ तक पर्णक निकलते हैं जो तिर्यक, दाँतेदार और नुकीले होते हैं। इनका रंग गहरा हरा होता है। पुष्प छोटे, असंख्य, सम्पूर्ण तथा द्विलिंगी होते हैं। पुष्प प्रायः गुच्छों या समूह में निकलते हैं जो सामान्य भाषा में बौर कहलाता है।

फरवरी और मार्च के महीनों में नीम की पत्तियाँ झड़ जाती हैं, किन्तु अप्रैल के प्रथम सप्ताह में पुनः कोंपल कहलाने वाली नयी चिकनी पत्तियाँ निकल आती हैं। नमकीन, क्षारीय या ऊसर सभी प्रकार की भूमि में यह समान रूप से फूलता और फलता है। नीम को अधिक पानी देने की भी आवश्यकता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ती। नीम के फूलने अथवा बौर आने का समय भी विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग होता है। मलाबार में जनवरी, मैसूर में फरवरी, मध्य प्रदेश में मार्च, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में अप्रैल और हिमाचल प्रदेश में मई मास में बौर आता है।

भारतीय धर्मों में नीम के वृक्ष तथा पत्तियों को बहुत महत्त्व दिया गया है। सनातनी इसकी गणना पवित्र वृक्षों में करते हैं। पत्तियों तथा टहनियों का पूजन के समय प्रयोग किया जाता है। नव-वर्ष के दिन नयी कोंपल को खाने और पत्तियों के उबाले हुए जल से नहाने की प्रथा है और इस प्रथा में आस्था रखने वालों का कथन है कि इस कार्य से आगामी वर्ष भर उन्हें किसी प्रकार का भयानक रोग नहीं होता। वैष्णव धर्म के अनुयायी विश्वास करते हैं कि चैतन्य महाप्रभु का जन्म नीम के वृक्ष के ही नीचे हुआ था, इसीलिए उनका नाम 'निमाई' पड़ा। घटस्थापन नामक त्यौहार जो भारत के विभिन्न प्रान्तों में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है, उसमें भी नीम की पत्तियों को घड़े में रखकर पूजन किया जाता है। लोगों का विश्वास है कि यह पर्व दुर्भाग्य तथा रोगों से उनकी रक्षा करता है। इसीलिए कहीं-कहीं इस पर्व पर बलि भी चढ़ायी जाती थी। श्मशान से लौटकर गृह-प्रवेश करने से पूर्व भी नीम की पत्तियों को चबाना आवश्यक माना गया है।

प्राचीन काल से नीम का अनेक रूपों में उपयोग होता आया है। मजबूत होने तथा आसानी से छिलने और कटने के कारण इसकी लकड़ी गाड़ियाँ, हल तथा घर और खेतों में काम आने वाले अन्य सामान बनाने में काम आती है। इससे दरवाजे, आलमारियाँ, फर्नीचर आदि भी बनते हैं। छाया के लिए बरगद, पाकर, महुआ आदि के साथ नीम का भी उपयोग किया जाता है। सम्राट अशोक तथा शाहजहाँ के समय सबसे अधिक नीम के वृक्ष ही सड़कों के किनारे लगाये गये थे। नीम की पतली-पतली शाखाएँ दातून के रूप में भी घर-घर प्रयोग की जाती हैं जिनके कीटाणु नाशक गुण के कारण मुँह की गन्दगी दूर हो जाती है। कुछ लोग नीम की पत्तियों को थोड़ा सुखाकर कपड़ों, किताबों और कागजों के भी बीच में रखते हैं, जिससे कीड़ों के लगने का भय नहीं रहता। अनेक गाँव में निर्धन और आदिम जातियाँ अब भी नीम के तेल का ही दीपक जलाती हैं।

प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महर्षि चरक तथा सुश्रुत के समय में भी लोगों को नीम के गुणों का ज्ञान था। उस समय भी नीम की पत्तियों, छाल और फलों को ओषधि के रूप में प्रयोग किया जाता था। संस्कृत भाषा में सम्भवतः नीम के अरिष्ट और पिचुमर्द आदि नाम इसीलिए पड़े कि इसके द्वारा अनेक रोगों का संहार होता है। मुसलमान जब भारत में आये और उन्होंने नीम को स्थान-स्थान पर स्वतंत्र रूप में उगा हुआ देखा तो वे इसे आजाद-दरख्त-ए-हिन्द कहने लगे, जिसके कारण इसका नाम वैज्ञानिक शब्दावली के अनुसार एजेडिरेक्टा इण्डिका (*azadirachta indica*) पड़ गया। यूनानी चिकित्सा विज्ञान के अनुसार नीम को शीत और शुष्क मानते हैं।

ओषधि के रूप में देशी तथा विदेशी दोनों ही चिकित्साओं में नीम का प्रयोग किया जाता है। नीम के तने और जड़ की छाल को विषम ज्वर और सामान्य दुर्बलता में देते हैं। नीम का तेल चर्म रोगों, गठिया, मोच आदि में लाभदायक सिद्ध होता है। चालुमुगरा के तेल के साथ मिलाकर प्रयोग करने पर कोढ़ में भी लाभ होता है। नीम की नयी पत्तियों का रस रक्तशोधक होने के कारण, चर्म रोगों से रक्षा भी करता है। कीटाणुनाशक गुण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण नीम का साबुन भी बनता है जो घावों, फोड़ों के धोने में प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार आजकल कार्बोलिक साबुन का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार कुछ वर्षों पूर्व नीम के साबुन का प्रयोग होता था। नीम के पुष्प मन्दाग्नि में लाभकारी होते हैं। नीम का गोंद बबूल के गोंद की भाँति ही शक्तिदायक होने के कारण खाने के काम आता है। ज्वर में नीम का उपयोग विदेशियों ने १८वीं शताब्दी से प्रारम्भ किया। इसका अध्ययन और प्रयोग करने वालों में डा० बारथोलेमो, सोनेरेट, गारसिया डी ओरटा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। डा. कोरनिश तथा ब्रिण्डौर ने तो यह भी प्रमाणित किया है कि ज्वर को रोकने में नीम की छाल सिन्कोना तथा संखिया से भी अधिक सफल है। डा. फोर्बस ने भी १८५५ में यही निष्कर्ष निकाला था।

श्री सिद्दीकी ने १९४५ में नीम की निबौरियों और तेल का विश्लेषण किया जिससे ज्ञात हुआ कि इसमें निम्बीन (nimbin), निम्बीनीन (nimbinin) तथा निम्बीडीन (nimbidin) आदि एल्कोलाइड (alkoloid) होते हैं।

नीम के कुछ वृक्ष आज तक विज्ञान के लिए एक पहेली बने हुए हैं। इनमें से एक कोयमबटूर जिले के कोठानूर ग्राम में है। यह बरगद के वृक्ष पर उगा है। इसकी पत्तियाँ अन्य नीम के वृक्षों की भाँति कड़वी नहीं हैं। किन्तु इसी वृक्ष की निबौरियाँ पकने, सूखने और भूमि में गिरकर अंकुरित होने पर जिन अंकुरों को जन्म देती हैं उन सभी की पत्तियाँ कड़वी होती हैं। ऐसा ही एक अन्य नीम मैसूर राज्य के माण्डया ग्राम में है। इसकी कुछ शाखाएँ जो निकट के मंदिर की दीवार को छूती हैं, उनकी पत्तियाँ कड़वी नहीं हैं, किन्तु अन्य कड़वी हैं। दोनों ही अवस्थाओं के अब तक कोई वैज्ञानिक कारण नहीं ज्ञात हो सके।

नीम वायु को शुद्ध भी करता है। पत्तियों की संख्या अधिक होने के कारण पर्णक्षेत्र (leaf area) अधिक होता है जिसके कारण प्रकाश संश्लेषण भी अधिक होता है और आक्सीजन अधिक मात्रा में निकलती है जिससे वायु शुद्ध होती है।

नीम के समान ही रूप वाला एक अन्य वृक्ष भी उत्तरी भारत में मिलता है जिसे बकायन (*bakayan*), महानिम्ब या मीलिया एजाडरेक (*melia azadiarach*) कहते हैं। यह भी उसी कुल का सदस्य है। नीम की अपेक्षा बकायन के वृक्ष, पत्ते तथा पुष्प बड़े होते हैं। विदेशी आक्रमणकारियों के साथ भारत में आने के कारण, आयुर्वेद में इसका अधिक उल्लेख नहीं मिलता। यह वृक्ष वास्तव में अरब और फारस का निवासी है। यूनानी ओषधि-विज्ञान के अनुसार बकायन गर्म और शुष्क होता है तथा इसको मिर्गी तथा सिर दर्द में प्रयोग करते हैं। छाल, पत्तियों या फल का रस अधिक मात्रा में बेहोशी उत्पन्न कर देता है।

नीम के रूप में इतने प्रभावशाली वृक्ष के अपने चारों ओर होते हुए भी यदि फोड़े-फुन्सियों, चर्मरोगों और मौसमी ज्वरों से हम पीड़ित रहते हैं तो यह हमारा अज्ञान है। ●

बेटा बाप से सवाया

तरुण गरुड़ पक्षी अपने माता-पिता (माता, पिता से कहीं बढ़ा-चढ़ा होता है) से लम्बाई-चौड़ाई और वजन में प्रत्यक्षतः बढ़कर होता है। अवलोकनों द्वारा ज्ञात किया गया है कि आयु के बढ़ने के साथ-साथ अंग-प्रत्यंग, विशेषतः अस्थियाँ कुछ सिकुड़ती हैं और कठिन परिश्रम के फलस्वरूप शरीर कद और भार में कुछ घटता भी जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारीरिक प्रतिरक्षा का मन्त्रदाता

एडवर्ड जेनर

वीरेन्द्रकुमार

एक समय यूरोप में चेचक ने वही आतंक फैला रखा था जो प्लेग ने। १०वीं शताब्दी में भारत और मिस्र से आगे बढ़कर इस रोग ने यूरोप में प्रवेश किया। तत्पश्चात् ६००-७०० वर्ष तक इसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव दृष्टिगत नहीं हुआ। १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस रोग ने यूरोप की जनसंख्या को आक्रांत कर दिया। उस समय जो व्यक्ति इस रोग द्वारा मरने से बच भी जाते तो उनके चेहरे तथा अन्य अंग विकृत हो ही जाते थे। तब प्राय: ही किसी अपराधी को खोजने के लिए यह पहचान दी जाती थी कि वह साफ चेहरे का है अथवा चेचक का साइनबोर्ड लिये हुए।

टीका लगवाना, बहुत पुरानी प्रथा

यह प्रथा भारत तथा मिस्र के लिए पुरानी होते हुए भी इंग्लैण्ड के लिए सर्वथा नयी साबित हुई। इसका सर्वप्रथम परिचय कराने का श्रेय लेडी मेरी वर्टले (Lady Mary Wortley) को है जो उन दिनों तुर्किस्तान में स्थित ब्रिटिश राजदूत की पत्नी थीं। उन्होंने मध्य पूर्वीय देशों में यह देखा था कि वहाँ के लोग सामूहिक रूप से शौकिया ही टीके लगवाते रहते थे। उन्हें देखकर तब तो यह आश्चर्य होता था कि टीके लगवाने के पश्चात् वे स्वयं को चेचक से प्रतिरक्षित अनुभव कर लेते थे।

लेडी वर्टले ने इंग्लैण्ड निवासियों को इस रोग के आतंक से मुक्त कराने तथा टीके के प्रति विश्वास स्थापित कराने के लिए सबसे पहले अपने बच्चों को टीके लगवाए और तत्पश्चात् राजघराने में भी प्रवेश करके राजकुमारी को इसके लिए राजी कर लिया। राजकुमारी इसके लिए सहज ही तैयार नहीं हुई। पहले उसने बन्दीगृह से ६ बन्दियों को इस प्रयोग के लिए तैयार किया और प्रयोग सफल हो जाने की खुशी में पुरस्कारस्वरूप उन्हें मुक्त भी कर दिया।

जेनर का प्रवेश और चिकित्सा में क्रांति

१७ मई १७४९ को बर्कले (इंग्लैण्ड) में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पादरी के घर जेनर का जन्म हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् जेनर ने डेनियल लडलो (Daniel Ludlow) नामक सर्जन के यहाँ चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन शुरू किया। शीघ्र ही १७७० में जेनर लन्दन चला आया और वहाँ डा. ज्हॉन हण्टर (Dr. John Hunter) के शिष्य होने का गौरव प्राप्त किया। उसी के अन्तर्गत उसे मुख्यतः भिन्न-भिन्न प्राणियों के नमूने संकलित करने का काम सौंपा गया। अन्य कार्यों में व्यस्त रहने पर भी जेनर की जिज्ञासा टीके लगाने की परिमार्जित और अधिक वैज्ञानिक विधि खोजने के प्रति बनी ही रही।

टीके लगाने की उन दिनों की प्रचलित तथा उलझी मान्यताओं को सुलझाने की दिशा में जेनर के प्रयोग बराबर चलते रहे। १७७५ में अनेक प्रयोगों के पश्चात् उसने यह निश्चित रूप से ज्ञात कर लिया कि बड़ी चेचक (cow-pox) स्वयं में दो रोगों का मिश्रण होती है जिनमें से केवल एक के रोगाणु छोटी चेचक (smallpox) के लिए निरोधक हो सकते हैं। इससे एक यह रहस्य स्वतः खुल गया कि बड़ी चेचक के टीके द्वारा प्रतिरक्षित हो जाने पर भी कभी-कभी असफलता क्यों खड़ी हो जाती है। जेनर ने यह भी ज्ञात किया कि बड़ी चेचक के रोग की एक निश्चित अवस्था पर ही उसका टीका लगाया जाए तो छोटी चेचक के प्रति सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है अन्यथा नहीं।

ऐतिहासिक प्रयोग

अपने प्रयोगों को प्रदर्शन द्वारा सिद्ध करने के लिए जेनर को ऐसे साधन उपलब्ध नहीं थे जिनसे बड़ी चेचक का टीका सहज ही उपलब्ध हो सके। वह यह देखकर तो चकित रह जाता था कि ग्वाले अपनी गायों को दुहते समय प्रायः ही बड़ी चेचक से ग्रसित हो जाते थे, किन्तु वे प्रथम ही बार रोगाक्रान्त होकर तत्पश्चात् सदैव के लिए इस रोग के प्रति सुरक्षित हो जाते थे। उन लोगों में यह मान्यता इतनी प्रबल थी कि वे रोगी के कपड़े-लत्तों को एकबार पहन-ओढ़ लेते थे ताकि कम से कम एकबार चेचक से आक्रान्त हो जाएँ और तत्पश्चात् आगे के लिए मुक्ति पा जाएँ।

उन्हीं लोगों में जेनर ने एक यह विशेषता भी देखी कि जहाँ सामान्यतः अन्य अरक्षित व्यक्ति चेचक से या तो प्राण गँवा देते थे अथवा चेहरे से कुरूप, दृष्टिहीन तथा विकलांग तक हो जाते थे, वहाँ वे ग्वाले अच्छे होने पर शरीर और रूप-स्वरूप से पूर्ववत् हो जाते थे।

अन्ततः योग्य पात्र की खोज में लगे हुए जेनर को सारा नेम्स (Sarah Nelmes) नामक एक ग्वालिन मिल ही गयी जो बड़ी चेचक से ग्रस्त थी। जेनर ने भरपूर सावधानी से उसके शरीर से चेचक के रोगाणु की अल्प मात्रा लेकर १४ मई १७७६ को जेम्स फिप्स

इस प्रतीकात्मक चित्र में प्रदर्शित है कि यदि एक ओर चेचक के रोगाणु शरीर रूपी भवन की जड़ खोदते हैं तो दूसरी ओर उन्हें रोग-प्रतिरोधक भी बनाया जा सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

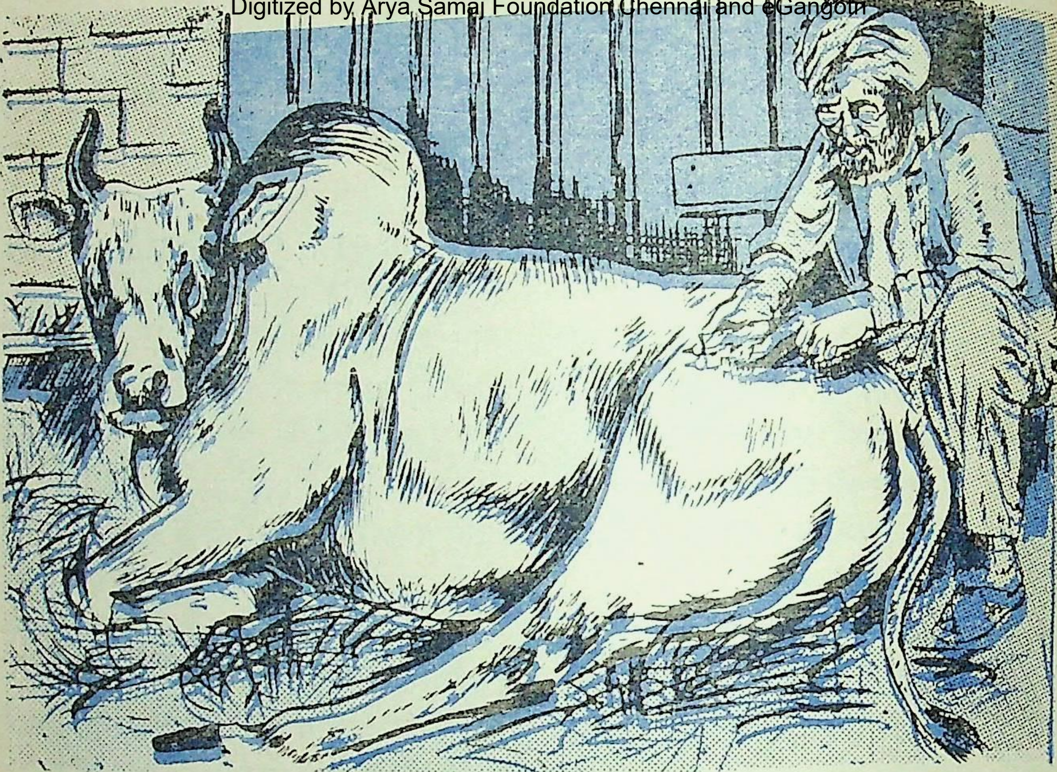

पशुओं को भी रोग-निरोधक बल देने के लिए टीका लगाना आवश्यक है

(James Phipps) नामक एक आठ वर्षीय बालक के टीका लगाया। वह ऐतिहासिक प्रयोग पूर्णत: सफल रहा किन्तु जनसाधारण को फिर भी इस पर एकाएक पूर्ण आस्था न हो सकी और काफी समय पश्चात् तक जेनर को वैसे प्रयोग दोहराने का पुन: अवसर न मिला।

शान्ति छोड़ी, व्यस्तता अपनायी

नैसर्गिक सौन्दर्य के उपासक, कुशल संगीतज्ञ और चेचक-चिकित्सा के अन्वेषक डा. जेनर ने सोचा कि मानव-कल्याण के लिए शान्त जीवन छोड़कर व्यस्तता और संघर्ष को अपनाना आवश्यक है और यह भी कि चेचक-टीके के अपने सफल प्रयोगों को अधिक से अधिक प्रचारित करना चाहिए। अपने इस संकल्प की पूर्ति हेतु जेनर जी-जान से जुट गया और अवरोधों तथा असफलताओं से विचलित न होता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता ही गया।

१८०३ में जेनर के प्रशंसकों, समर्थकों के प्रयत्न से लन्दन में रायल जेनेरियन सोसाइटी स्थापित की गयी। उस सोसाइटी का प्रमुख उद्देश्य टीकों के प्रचार द्वारा चेचक-उन्मूलन था। प्रारम्भिक डेढ़ वर्ष में ही जेनर की विजय-पताका फहरा उठी और विपक्षियों के समस्त विरोध यह देखकर समाप्त हो गये कि उतने अल्प समय में ही १२००० व्यक्तियों को टीके लगाए जाने के फलस्वरूप मृत्यु संख्या २०१८ से घटकर ६२२ रह गयी। शीघ्र ही जेनर की वह छोटी-सी संस्था राष्ट्रीय संस्था बन गयी।

मन्दगामी किन्तु स्थायी ख्याति

जेनर का जीवन अपने उत्तरकाल तक अत्यन्त संघर्षमय तथा घोर परिश्रमी रहा। उसने ख्याति प्राप्त करने की न कभी लालसा रखी और न ही कभी स्पर्धा की। जनसाधारण ने शारीरिक प्रतिरक्षा के उस मन्त्रदाता को बहुत देर से पहचाना। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने

[शेष पृष्ठ ३६ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्राष्ट्रीय शान्त-सूर्य-वर्ष

हरीश अग्रवाल

इस समय संसार के अनेक देश एक नये अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष की तैयारी कर रहे हैं, जिसका नाम इस बार अंतर्राष्ट्रीय शांत सूर्य वर्ष (International Year of the Quiet Sun--IQSY) रखा गया है। यह वर्ष दो वर्ष का होगा और १ जनवरी १९६४ से ३१ दिसम्बर १९६५ तक मनाया जाएगा। अंतरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष १ जुलाई १९५७ से ३१ दिसम्बर १९५८ तक मनाया गया था। शांत सूर्य वर्ष नाम इसलिए रखा गया है कि इन दो वर्षों में सूर्य में बहुत कम गतिविधि होगी और वैज्ञानिकों को सूर्य का अच्छी तरह से अध्ययन करने का अवसर मिलेगा। इस अवधि में पृथ्वी के ऊपरी वायुमंडल पर सूर्य का प्रभाव भी न्यूनतम होना चाहिए, इसलिए कम चुम्बकीय तूफान आएँगे, उत्तरी ज्योतियाँ कम दिखायी देंगी और अयनमंडल में गड़बड़ी भी कम होगी।

अंतर्राष्ट्रीय शांत सूर्य वर्ष का प्रमुख उद्देश्य सूर्य का प्रभाव उस समय पृथ्वी और अन्तरग्रही अवकाश पर देखना है जब इसमें सबसे कम गतिविधि होती है। इस कारण इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उन्हीं भू-भौतिक घटनाओं का अध्ययन किया जाएगा जो सौर-गतिविधि से निकट रूप से सम्बन्धित होंगी। ये घटनाएँ अनेक हैं, जैसे अंतरिक्ष किरणें, उत्तरी ज्योतियाँ, पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र और पृथ्वी के ऊपरी वायुमंडल, विशेषतः अयनमंडल पर अनेक प्रभाव।

सूर्य कलंक

वैज्ञानिक लगभग सौ वर्ष से सूर्य की गतिविधि का मापदण्ड मानते आये हैं और यह उल्लेखनीय है कि गतिविधि ११ वर्ष के चक्र के अनुसार होती है। वैज्ञानिक अभी तक इस चक्र का रहस्य नहीं जान पाये हैं। जब सूर्य कलंकों की गतिविधि न्यूनतम होती है तो सूर्य को शांत कहा जाता है।

लेकिन जब सूर्य उत्तेजित होता है तो इसकी गतिविधि बढ़ जाती है। इसका प्रकोप पृथ्वी पर बरसता है और रेडियो संचार में बाधा पड़ती है, पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र डोल जाता है, कुतुबनुमाओं की सुइयाँ डगमगाने लगती हैं तथा तार और टेलीफोन संचार में बाधा पड़ने लगती है।

इसी सूर्य-प्रकोप के समय सूर्य से ज्वालाएँ निकलती हैं और कणों की वर्षा होती है। ये कण किस प्रकार कहाँ गिरफ्तार हो जाते हैं, सूर्य के पास या पृथ्वी के पास, यह बात अभी तक एक रहस्य बनी हुई है। शांत सूर्य वर्ष में इस रहस्य का पता लगाने का प्रयत्न किया जाएगा।

अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के दौरान अमरीकी उपग्रहों से पृथ्वी के चारों ओर विकिरण पट्टियों का पता चला था, जिन्हें वान एलन पट्टियाँ कहते हैं। इन पट्टियों का विकिरण अंतरिक्ष-यात्रियों के लिए खतरनाक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता है। ५० से लेकर १६० मील की ऊँचाई तक पृथ्वी के वायुमंडल पर सूर्य के अल्ट्रावायलेट तथा एक्स-रे विकिरण का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसी के कारण रेडियो का प्रसारण एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप को संभव हो गया है।

शान्त सूर्य वर्ष के दौरान पृथ्वी से १५ से ३५ मील की ऊँचाई तक का वायुमंडल राकेटों से निरंतर भेदा जाएगा। अमरीका की तीनों सेनाओं की एजेंसियाँ और अमरीकी

सूर्य के आवेशित होने पर उसके इलेक्ट्रान-कणों की पृथ्वी पर बौछार

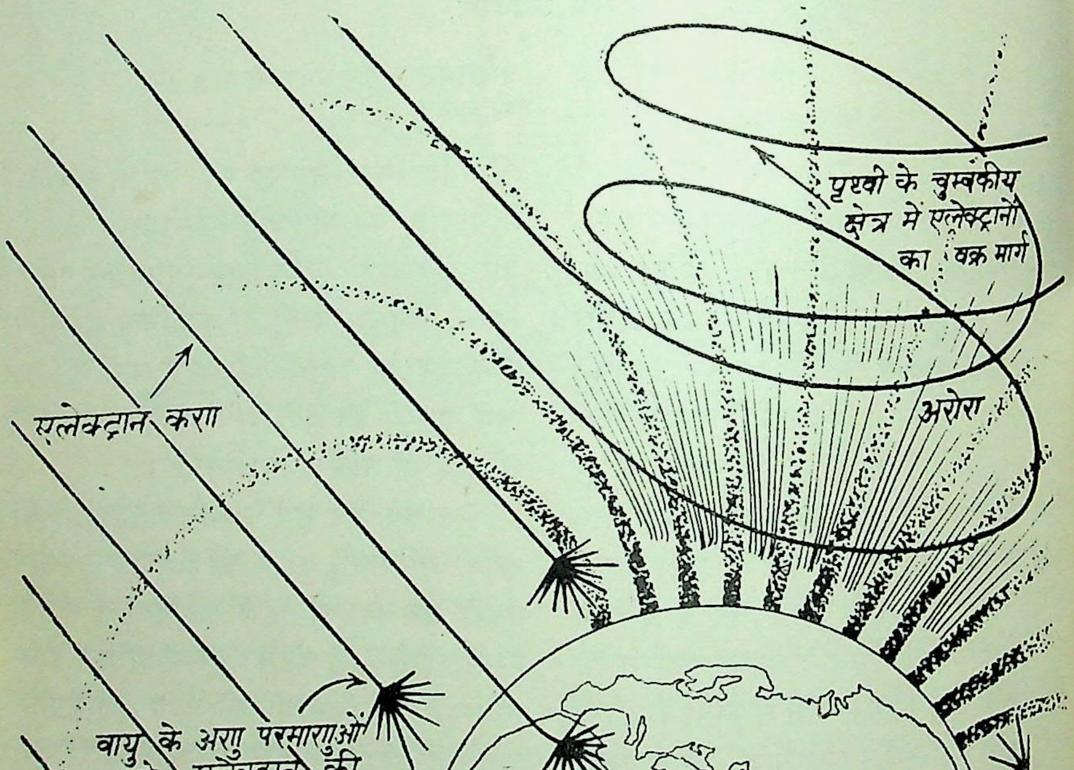

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

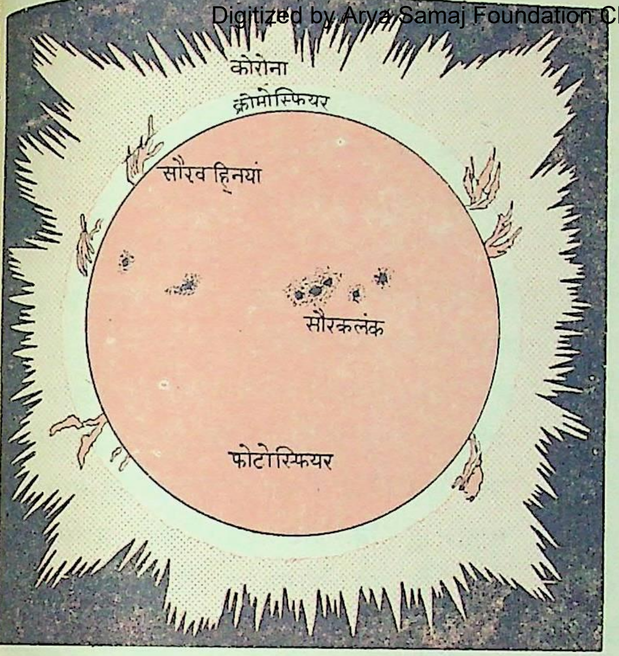

सूर्य का प्रभामण्डल

मौसम विभाग के वैज्ञानिक इस कार्यक्रम में भाग लेंगे। इस क्षेत्र के वायुमंडल में ओजोन की मात्रा भी मालूम की जाएगी, आंशिक रूप से उन उपग्रहों से, जिनके यंत्र पृथ्वी की ओर केन्द्रित होंगे।

इनके अतिरिक्त अमरीका ध्रुवीय क्षेत्रों तथा समुद्र में खड़े जहाजों से वायुमंडलीय राकेट छोड़ेगा। कुछ राकेटों में विस्फोटक पदार्थ होंगे जो ७० मील की ऊँचाई तक जाएँगे, जिससे ध्वनि तरंगों के द्वारा अधिक ऊँचाइयों पर हवाओं की रफ्तार मालूम की जा सकेगी वैज्ञानिकों को आशा है कि इस सूचना से मौसम की सही भविष्यवाणी में सहायता मिलेगी, दूर संचार में आनेवाली बाधाओं से रक्षा हो सकेगी, अंतरिक्ष यात्राओं के खतरों को अच्छी तरह समझा जा सकेगा और पृथ्वी के सम्बन्ध में भी अधिक जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

अमरीका की अंतरिक्ष एजेंसी चन्द्रमा पर तथा शुक्र और मंगल ग्रहों के पास बिना मानव के उपग्रह भेजेगी।

भारतीय कार्यक्रम

अंतर्राष्ट्रीय शांत सूर्य वर्ष के लिए भारतीय कार्यक्रम गत वर्ष ही तय हो गया था। इसके लिए एक विशेष समिति बनायी गयी है। भारतीय कार्यक्रम इन क्षेत्रों में बाँटा गया है।

मौसम विज्ञान—यह हिन्द महासागर अभियान से सम्बद्ध है और इसके अंतर्गत वायुमंडल की जाँच-पड़ताल के लिए ऊँचाई तक गुब्बारे छोड़े जाएँगे और नियमित विश्व दिवसों तथा विशेष भू-भौतिक इंटरवलों पर मौसम सूचक राकेट छोड़े जाएँगे।

अयनमंडल—अहमदाबाद, त्रिवेन्द्रम, वाल्टेयर और दिल्ली के ऊपर अयनमंडलीय नाप-जोख होगी। इनके अतिरिक्त कलकत्ता और कोडाईकनाल से गुब्बारे छोड़े जाएँगे।

सौर-गतिविधि—कोडाईकनाल से टेलिस्कोप द्वारा सूर्य का अध्ययन किया जाएगा;

सूर्य कलंक का एक चक्रवात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोडाईकनाल, अहमदाबाद, कलकत्ता और दिल्ली में सौर रेडियो गड़बड़ी का अध्ययन होगा और अहमदाबाद और दिल्ली में सौर-विकिरण का अध्ययन होगा।

अन्तरिक्ष-अनुसंधान—अन्तरिक्ष किरणों और अंतरिक्ष का अनुसंधान किया जाएगा। ये अध्ययन अहमदाबाद, कोडाईकनाल, नैनीताल और दिल्ली में होंगे।

भारतीय कार्यक्रम में आंध्र विश्वविद्यालय, बोस इंस्टीट्यूट, कलकत्ता, ज्योडेटिक एण्ड रिसर्च ब्रांच, सर्वे आफ इंडिया, देहरादून, भारतीय मौसम विभाग, नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी, फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी, अहमदाबाद, पूना विश्वविद्यालय, टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च, बम्बई तथा उत्तर प्रदेश राजकीय वेधशाला, नैनीताल भाग लेंगे।

पिछली गर्मियों में पेरिस के यूनेस्को हाउस में अंतर्राष्ट्रीय शांत सूर्य वर्ष के लिए एक समिति बनायी गयी थी। इस समिति के प्रधान ब्रिटेन के प्रो. बेनन के अनुसार शांत सूर्य वर्ष का उद्देश्य बदली परिस्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष में किये गये प्रयोगों को दोहराना ही नहीं है, बल्कि कुछ मूलभूत खोजें भी करना है।

अमरीका के एक वैज्ञानिक डा. ओडीशा से एक पत्रकार ने पूछा "इन सब कार्यक्रमों का व्यावहारिक प्रयोग क्या है?"

डा. ओडीशा ने उत्तर दिया, "ज्ञान की खोज ही अपने में एक उचित और व्यावहारिक लक्ष्य है। विज्ञान का इतिहास इस बात का साक्षी है कि नये ज्ञान की प्राप्ति के बाद ही उसे व्यवहार में लाना सम्भव होता है।"

अंतर्राष्ट्रीय शांत सूर्य वर्ष में किये जाने वाले वैज्ञानिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण मानव के कल्याण के लिए एक नया संदेश लाने वाले हैं। मानव पृथ्वी और उसके चारों ओर के वातावरण को अच्छी तरह समझ सकेगा और इस जानकारी को व्यवहार में ला सकेगा।

एडवर्ड जेनर

[पृष्ठ ३२ का शेष]

चारों ओर की सिफारिशों और प्रशंसा के फलस्वरूप प्रारम्भ में जेनर को १०,००० पौण्ड की वार्षिक सहायता प्रदान की। जेनर उसके सदुपयोग स्वरूप नित्यप्रति ३००-४०० गरीबों को निःशुल्क चेचक के टीके लगाता रहा। क्रमशः वह सहायता २०,००० और ३०,००० तक बढ़ा दी गयी। भारत की ओर से भी लगभग ७,४०० पौण्ड की सहायता दी गयी।

चेचक-उन्मूलक टीकों का इतना प्रचार बढ़ा कि शहर-शहर और गाँव-गाँव में हजारों व्यक्ति सामूहिक रूप से टीके लगवाने लगे। इसके अतिरिक्त, टीके लगाने वालों के दल के दल जहाजों द्वारा भी समुद्र-पार देशों में दूर-दूर गये। १८१३ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने जेनर को M.D. की उपाधि प्रदान की। १८१४ में उसने लन्दन की यात्रा की। जनवरी १८२३ में मानव को उसके महानतम शत्रु चेचक से मुकाबला लेने योग्य और जीतने योग्य बनाने वाले एडवर्ड जेनर की मृत्यु हो गयी। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

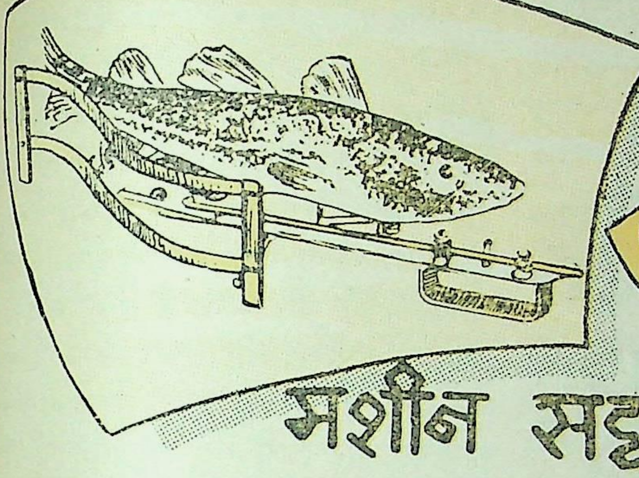

जन्तु मशीन सदृश चलते हैं

डा. महेश्वरसिंह सूद

चलना जन्तुओं की एक विशेषता है। जितनी भी मशीनें या इंजन बनाये गये हैं वे सब जन्तुओं के चलन को देखकर ही बनाये गये हैं। वैज्ञानिकों ने सूक्ष्म दृष्टि से जन्तुओं के चलने को परखा और उससे प्राप्त ज्ञान के आधार पर स्वचालित मशीनें बनायीं। जन्तु और मशीन में अन्तर केवल इतना रहता है कि जन्तु स्वयं गति करता है जबकि मशीन को शक्ति देनी पड़ती है। जन्तु जिन विभिन्न परिस्थितियों में रहते हैं उसी के अनुसार उनमें चलन या गति करने की विधि होती है; जैसे भूमि पर रहने वाले रेंगते हैं, उछलते हैं, कूदते हैं, चलते हैं या दौड़ते हैं। ऐसे समस्त जन्तुओं को भूमिचर कहा जाता है। कुछ वायु में उड़ते हैं उनको वायुचर कहते हैं। कुछ पानी में तैरते हैं उन्हें जलचर कहा जाता है। देखने में सभी जन्तुओं में चलन भिन्न प्रकार का प्रतीत होता है पर वास्तव में गति करने का सिद्धान्त सबका एकसा ही है।

यदि जन्तु को विधिपूर्वक चलन करना है तो उसको मोटरकार के इंजन के समान कार्य करने वाले अंग चाहिए अर्थात उनमें इंजन होना चाहिए, चाल देने के लिए चलाने वाले इंजन का अन्य पुर्जों से मिलान होना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर रोकने के लिए ब्रेक होना चाहिए। यदि ऐसी मोटर-कार को हम चलाना चाहें जिसका इंजन कुछ देर के लिए बन्द हो गया हो या कर दिया गया हो तो वह समतल स्थल पर तभी हिलेगी जबकि उसको आगे या पीछे से धक्का दिया जाएगा। ऐसी मोटरकार को आगे बढ़ाना तभी सम्भव हो पाता है जबकि हम समान बल तथा विपरीत दिशा में अपने पाँव के बल से भूमि पर धक्का देते हैं और ऐसा करने में हम जिस शक्ति से पीछे धक्का देते हैं उस गति से कार आगे को बढ़ती है। यह धक्का देना शक्ति देना होता है। मोटरकार जड़ वस्तु है। यदि उसे शक्ति न दी जाए तो वह गति नहीं कर सकती। वैज्ञानिक भाषा में हम यह कह सकते हैं कि मोटरकार में निश्चलता (inertia) होती है और इस निश्चलता को बाह्य शक्ति से जीता जाता है। धक्का कार को चलाने की शक्ति देता है और कार उस समय तक चलती रह सकती है जब तक इस शक्ति के विरुद्ध दिशा में दूसरी शक्ति न लगायी जाए। ऐसी शक्ति कार में पहियों और जमीन के बीच में रगड़ से आती है। जब हम रुकी हुई कार के इंजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

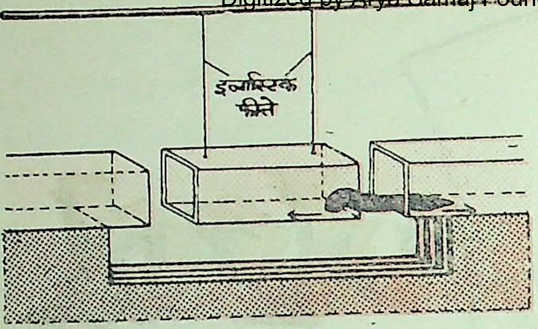

उपरोक्त प्रयोगपात्र जोंक आगे बढ़ने के लिए अपने पृष्ठ भाग के नीचे लगे नन्हे चूषक अंग (sucker) को भूमि पर दबाते समय कितना बल लगाती है, यह इलास्टिक फीतों के खिचाव से ज्ञात कर लिया जाता है

को स्विच खोलकर, गीयर में डालकर स्टार्ट करते हैं तब कार आगे की ओर बढ़ जाती है। बिलकुल यही सिद्धान्त, जब हम हाथ से धक्का देते हैं, काम में आता है। केवल हमारे हाथ और पाँव पहियों और धुरी का स्थान ले लेते हैं। पीछे के पहिये पृथ्वी पर पीछे की ओर दबाव डालते हैं जिससे कार आगे की ओर बढ़ती है। यदि किसी प्रकार पिछले पहियों को ऊपर उठाकर स्वतन्त्रता से घूमने दिया जाए तो कोई आगे की ओर फेंकने वाला दबाव उत्पन्न नहीं होगा और इससे मोटरकार आगे की ओर नहीं बढ़ेगी। इस तथ्य को हम एक साधारण प्रयोग से सिद्ध कर सकते हैं और इससे यह भी सिद्ध कर सकते हैं कि मनुष्य या जन्तु का चलन भी इसी मोटरकार की तरह होता है। एक चबूतरा स्प्रिंगों से लगा हुआ बना लें और उस पर बिजली से चालित होने वाली एक कार का मॉडल इस प्रकार रख लें कि उसका अगला पहिया तो स्थिर चबूतरे पर हो और पिछला पहिया स्प्रिंगों से लगे चबूतरे पर। फिर इसको चालित करें तो देखेंगे कि जब मोटरकार आगे को चलती है तो स्प्रिंग से लगा हुआ चबूतरे का भाग पीछे को खिसकता है। आगे की ओर बढ़ाने वाली शक्ति बिलकुल पीछे को ढकेलने वाली शक्ति के बराबर होती है।

यदि यही प्रयोग कार के स्थान पर मनुष्य या जन्तु को लेकर किया जाए तो यही सिद्ध होगा कि जन्तु भी आगे की ओर पीछे को धक्का देकर ही गति करता है। भूमिचर पृथ्वी पर पीछे की ओर बल लगाकर आगे की ओर बढ़ता है, जलचर भी पानी को पीछे की ओर धकेल कर आगे की ओर बढ़ता है तथा वायुचर वायु को पीछे की ओर धकेलकर आगे की ओर बढ़ता है। प्रत्येक दशा में जन्तु को आगे की ओर बढ़ाने वाला बल जन्तु द्वारा पीछे की ओर धक्का लगाने की शक्ति के बिलकुल बराबर होता है।

कार में, पानी के जहाज में, वायुयान में, सब में धरातल या स्थल के विरुद्ध पीछे की ओर दबाव एक ही प्रकार के यंत्र से उत्पन्न किया जाता है जिसको पंखा (propeller) कहते हैं। जिस प्रकार स्वचालित यानों में जहाज या हवाई जहाजों को आगे बढ़ाने वाला पंखा सबसे आवश्यक भाग होता है उसी प्रकार जन्तु भी स्वचालित होने के कारण अपने में पंखानुमा आकृति रखते हैं, जो जन्तु को आगे चलाता है। वे आकृतियाँ जन्तुओं में आसानी से पहचानी जा सकती हैं—जैसे कुत्ते की टाँग या पक्षियों के पंख। कुत्ते की टाँगें शरीर पर इधर-उधर गोलाई में घूमती हैं

यदि (अ) पहिये की छह तानों (spokes) को छह पाँव मान लें तो पहिये को गति देने के लिए एक बार एक ही पाँव बल लगाता है और उसके हटने से पूर्व ही दूसरा उसका स्थान लेने आ जाता है। वही प्रयोजन (ब) पहिये के अनुसार मानव के दो पाँवों द्वारा सिद्ध हो जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ये टाँगें जमीन पर विपरीत दबाव डालती हैं जिससे कुत्ता आगे की ओर गति करता है। इसी प्रकार पक्षियों के पंख भी ऊपर नीचे होते रहते हैं और हवा को विपरीत दिशा में दबाते रहते हैं जिससे पक्षी आगे की ओर बढ़ते हैं। किन्हीं-किन्हीं जन्तुओं—घोंघा आदि—में यह श्रंग इतना स्पष्ट नहीं होता जैसा कि कुत्ते या पक्षियों में। फिर भी यदि ध्यान से देखा जाए तो पता चलेगा कि जब घोंघा रेंगता है तो उसके कुछ भाग पृथ्वी पर जमे रहते हैं तथा कुछ भाग गति करते हैं जिससे विपरीत दिशा में दबाव उत्पन्न हो जाता है। समस्त जन्तु अपनी शक्ल बदलकर और पीछे की ओर धकेलकर ही चल पाते हैं अथवा यों कहा जाए कि इन दोनों नियमों का पालन करके ही जन्तु चलन कर पाते हैं।

जन्तुओं को आगे बढ़ाने वाले अंगों में तथा यानों के पंखों में विभिन्नता थी। अब जेट विमानों में यह भिन्नता भी समाप्त हो गयी है। उनमें पीछे की ओर सीधा धक्का लगता है। प्रकृति में यदि यह आकृति वृत्त में घूमने वाली ही होती तो शरीर के अन्दर जो रक्त नलिकाएँ या नाड़ियाँ होती हैं वे लगातार बल खाने से टूट जातीं। अतः प्रकृति कभी भी पहियानुमा आकृति नहीं रखती बल्कि उसने उत्तोलकों (levers) का सहारा लेकर इस कार्य को पूरा किया है। ये ऊपर-नीचे, अगल-बगल घूम सकते हैं, परन्तु कभी भी पूर्ण वृत्त में नहीं घूमते। देखने में तो धुरी में लगा हुआ पहिया और उत्तोलक अलग-अलग दिखाई देते हैं परन्तु वास्तव में धुरी में लगा पहिया उत्तोलकों या आरों (spokes) का बना होता है जो एक-दूसरे के बाद क्रमशः काम में आते हैं।

पहिये के समान जन्तुओं की टाँगे भी कार्य करती हैं। टाँगे अपने अर्ध छोर पर उसी प्रकार घूमती हैं जैसे कि पहिया अपनी धुरी पर। पहिये के आरे और टाँगों में केवल इतना अन्तर रहता है कि टाँग कूल्हे की सन्धि पर जब उठी होती है, आगे की ओर घूमती है तथा जब पृथ्वी पर होती है तो पीछे की ओर घूमती है। पहिये के आरे सदैव एक ही दिशा में घूमते हैं। यांत्रिक रूप से दोनों में घूमने वाला प्रभाव समान होता है।

यदि हम किसी ऐसे जन्तु को जैसे कनखजूरा, जिसमें टाँगों की संख्या अत्यधिक होती है, चलते हुए देखें तो पता चलेगा कि प्रत्येक टाँग तभी ऊँची जाती है जबकि दूसरी पृथ्वी पर आ जाती है। बहुधा प्रश्न पूछा जाता है कि कनखजूरा पहले अपनी कौनसी टाँग उठाता है। इसका उत्तर है कि उसकी सब टाँगें पहिये के आरों की तरह साथ ही उठना शुरू करती हैं परन्तु जन्तु का नाड़ी मण्डल उसको इस प्रकार नियंत्रित कर लेता है कि एक के उठने पर ही दूसरी टांग पृथ्वी पर आती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि

शरीर के रोयें पवन-झकोरे में किस प्रकार आगे-पीछे की गति का आभास कराते हैं, वह इस चित्र में प्रदर्शित है। १ से ५ तक अग्र गति और ६ से ६ तक पृष्ठ गति प्रदर्शित है

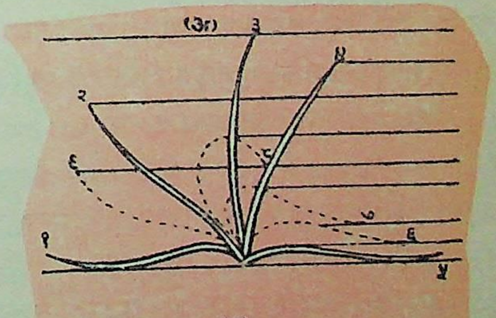

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य दो, कुत्ता आदि चार, पतंगे आदि छह, मकड़ी आदि आठ तथा कनखजूरा या काँतर आदि अनेक पाँवों के सहारे चलते हैं।

जन्तुओं में उत्तोलकों का स्थान हड्डियाँ लेती हैं तथा शक्ति प्रदान करने का कार्य मांसपेशियाँ। मांसपेशियाँ सामान्य रूप से लोथड़ेनुमा होती हैं परन्तु नाड़ी-तन्तुओं के प्रभाव से इतनी सख्त और शक्तिशाली हो जाती हैं कि अनुमान लगाना कठिन है। मांसपेशियों का कार्य जन्तु की टाँगों को इधर-उधर हिलाना होता है। हड्डियाँ सामान्य रूप से उत्तोलकों का कार्य करती हैं। यंत्र-शास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के उत्तोलक होते हैं परन्तु प्राणीविज्ञान के लिए यह मान लेना पर्याप्त होगा कि मांसपेशियों और हड्डियों में एक ही चूल से यह कार्य सम्पन्न हो जाता है। विभिन्न परिस्थितियों में शरीर के उत्तोलकों का स्वरूप भी परिवर्तनशील होता है। जब हम अपने समस्त शरीर को अपने पाँव की उँगलियों पर पिण्डलियों की मांसपेशियों द्वारा उठाते हैं तो उँगलियाँ शक्ति बिन्दु बनाती हैं, वजन टखने की सन्धि पर आता है तथा शक्ति पिण्डलियों की मांसपेशियों से एड़ी के खिंचाव से बनती है। यंत्र-शास्त्र के अनुसार इस प्रकार का उत्तोलक द्वितीय श्रेणी का होता है। यदि

यह बड़ा कनखजूरा ४०० से अधिक पाँवोंयुक्त है फिर भी एक बार में एक से अधिक पाँव भूमि को स्पर्श नहीं करता। यह क्रम द्रुत गति का होने के कारण प्रतीत होता है कि अनेक पाँव एक साथ स्पर्श कर रहे हैं

एड़ी की सन्धि को स्थिर करके उंगलियों और एड़ी को स्वतन्त्र रूप से घूमने वाला कर दिया जाए तो पिण्डलियों की मांसपेशियाँ पाँव को प्रथम श्रेणी के उत्तोलकों की तरह घुमायें हैं।

चलन में जन्तु और मशीन की तुलना को और आगे देखा जाए तो पता चलता है कि जन्तु अपनी शक्ति को जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही काम लाता है। यह उसी प्रकार होता है जैसे इंजन में शक्ति को थ्रोटल (throttle) नियंत्रित करता है। यह नियंत्रण शक्ति मांसपेशियों को काम में लाने से आ जाती है। इस प्रकार केन्द्रीय नाड़ीमण्डल तो संचालक या ड्राइवर होता है और उससे संलग्न नाड़ियों का काम इंजन के शक्ति नियंत्रक की तरह होता है। मस्तिष्क समस्त प्राप्त संवेदनाओं के आधार पर कार्य करता है। जन्तु तथा मशीन एक ही प्रकार से चलन करते हैं।

उपग्रह के माध्यम से फोन वार्ता

अमरीका-द्वारा प्रक्षेपित 'सिनकौम' संसार का वह प्रथम भू-उपग्रह है जो पृथ्वी का सहगामी है अर्थात पृथ्वी के साथ ही २४ घण्टे में एक परिक्रमा पूरी करता है। जब वह ब्राजील के ऊपर २२,३०० मील की ऊँचाई पर परिक्रमा कर रहा था तब ३० मिनट के लिए उससे सम्पर्क साधकर अमरीका के भूतपूर्व प्रेसीडेण्ट स्व. केनेडी ने ६००० मील दूर नाइजीरिया के प्रधान मन्त्री अबूबकर से टेलीफोन पर संदेश प्रसारित किया था—'व्हाइट हाउस' से आपके साथ बातचीत करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता है।' सिनकौम के माध्यम से उक्त वार्ता को लगभग ४५,०००, मील की दूरी तय करनी पड़ी थी।

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

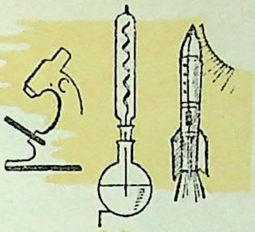

... अब समेटिए, अब पूरा कीजिए

प्रायः ही धाराप्रवाह वक्तृत्व देने वालों को समय का ज्ञान नहीं रहता तब वे श्रोताओं के कोप का भाजन बनने की स्थिति में पड़ जाते हैं। मास्टर-टाक-टाइमर ऐसी परिस्थिति में उबारने के लिए नया यंत्र है। हरी-भूरी और लाल बत्तियों युक्त इस स्वचालित यंत्र में वक्ता के लिए निर्धारित समय सूचित करने वाले अंक पर सुई बिठा दी जाती है। जब केवल पाँच मिनट रह जाते हैं तब हरी बत्ती संकेत करती है कि अब भाषण समेटना शुरू कीजिए; दो मिनट रह जाने पर भूरी बत्ती कहती है फुलस्टाप दूर नहीं और लाल बत्ती बोलती बन्द कर देती है।

... धुलाई में थैला गायब !

अस्पतालों में सफाई तथा कीटाणुरोधन बनाये रखने के लिए एक नये प्रकार के प्लास्टिक थैले का निर्माण किया गया है। चारपाइयों तथा रोगियों के गन्दे कपड़ों को धुलाई के लिए समेटकर रखने के अब तक के विविध प्रकार और साधन कीटाणुरोधन बनाये रखने में पूर्णतः समर्थ नहीं हो पाते थे। इन थैलों के प्रयोग से आश्चर्यजनक रूप में ९२ प्रतिशत सफाई तथा कीटाणुरोधन रखा जा सकेगा। विधि यह है कि मैले गन्दे कपड़ों को उतार कर सीधे ही इन थैलों में भर दिया जाएगा। थैलों की सिलाई ठण्डे पानी का स्पर्श पाते ही खुल जाएगी। अतः बन्द थैले को ही धुलाई मशीन में डाल देने पर मुँह की सील तथा सीवन पहले खुल जाएँगे और पानी गर्म होने पर बाकी थैला समूचा उसमें घुलकर रह जाएगा। उसके घुल जाने से कपड़ों की सफाई में कोई अन्तर भी नहीं पड़ेगा।

कागज अभी था, अभी नहीं !

बहुधा इस बात की ग्रावश्यकता पड़ जाती है कि नाप-तोलकर बाँधे हुए दवाग्रों, रंगों तथा खाद ग्रादि के पैकेट बगैर खोले ही काम में ले लिये जाएँ। इस प्रयोजन के लिए ग्रमरीका की गिलब्रेथ (Gilbreth) कम्पनी ने ऐसा कागज बनाया है जो पानी में पलक मारते ही घुल जाता है। यह कागज इतना मजबूत है कि हर प्रकार की सीलन खिंचाव तथा बल को सहन कर सकता है। यह कागज उनके लिए वरदान स्वरूप है जो संकट सामने देखते ही ग्रपने दस्तावेजी सबूतों को नष्ट कर देना चाहते हैं। ऐसे दस्तावेज पानी में डुबोने की देर है, सेकण्डों में थे न थे हो जाएँगे।

बुझी आँखों को नयी रोशनी

ग्राँखों में नयी पुतलियाँ बिठाने के यद्यपि ग्रनेक प्रयोग प्रचलित हैं किन्तु शत-प्रतिशत सफलता ग्रभी बाकी ही है क्योंकि जल्द ही वे बिठायी हुई पुतलियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं। मेक्सिको के एक नेत्र-चिकित्सक डा. मेन्युग्रल टारेस (Dr. Manuel Torres) द्वारा प्रस्तुत एक नया प्रयोग पूर्ण सफलता के काफी निकट पहुँच चुका है। उन्होंने शीशा तथा प्लेटिनम मिश्रित सर्वथा नवीन प्रकार की पुतलियाँ बनाकर दृष्टिहीनों को दृष्टि देने के ग्रनेक सफल प्रयोग किये हैं। उनके प्रयोगपात्र रोगियों में ग्रधिकांश की पुतलियाँ ग्रपारदर्शी हो चुकी थीं, कुछेक की सर्वथा ग्रन्ध तथा शेष व्यक्तियों की काफी दोषपूर्ण थीं। उनमें बिठायी हुई पुतलियों से वे न केवल देख सकते थे बल्कि पुतलियाँ इस कुशलता से बिठायी गयीं थीं कि तिरछापन तथा ग्रधिक बिम्ब दिखने के भी दृष्टिदोष दूर हो गये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप चाहे दफ्तर में काम करते हों
अथवा खेत या कारखाने में,
समय की पुकार है कि
आप इतनी मेहनत से काम करें
जितनी कि पहले कभी न की हो।
काम या उत्पादन पहले से
दुगुना कर दें, और इससे भी
कुछ अधिक! याद रखें कि आपका
अधिक परिश्रम राष्ट्र को
अधिक बलवान बनाता है।

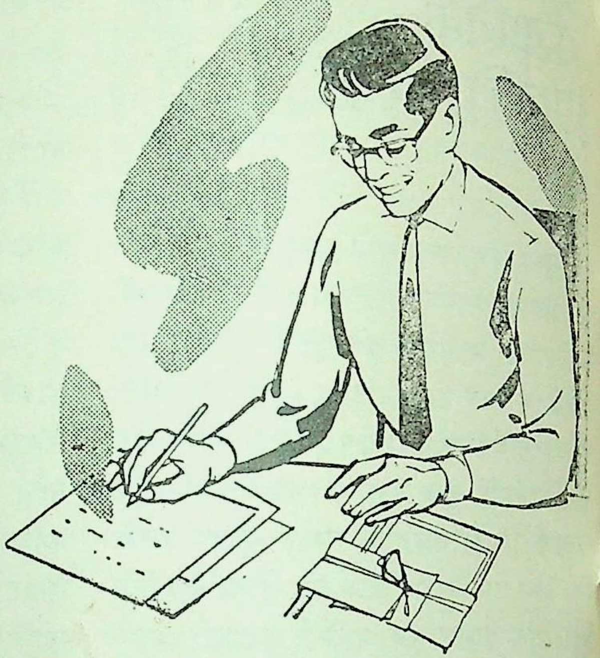

जी तोड़ मेहनत करें

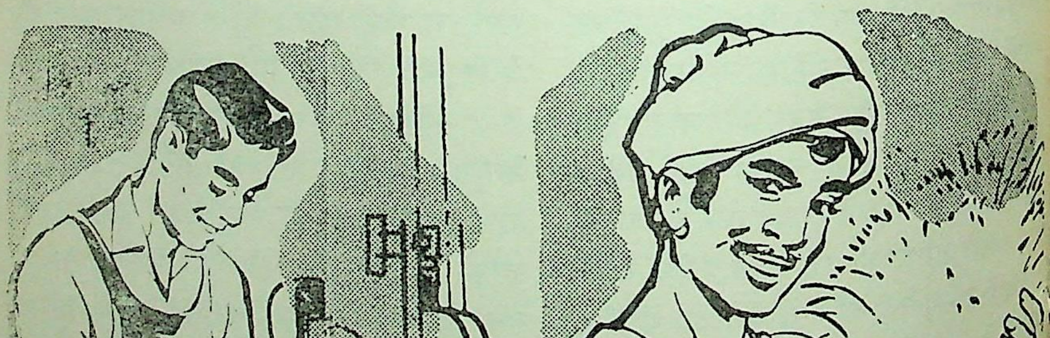

अधिक उत्पादन, सुदृढ़ रक्षा के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

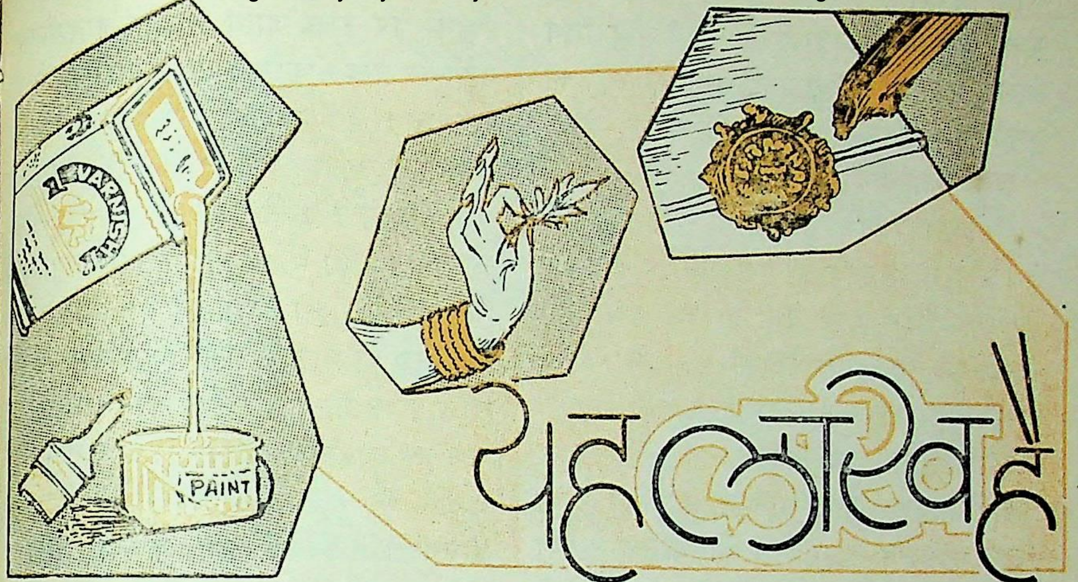

यह लाख है

नरेन्द्र छाबड़ा

यह लाख है। न तो यह खनिज है, न वनस्पति ही। इसकी बनी हुई वस्तुओं के किसी न किसी प्रयोग से शायद ही कोई व्यक्ति अछूता हो। ग्रामोफोन का रिकार्ड, वार्निश, मुहर लगाने की लाख, खिलौने, चूड़ियाँ, स्याहियाँ, चमड़े को चमकाने तथा बिजली की अनेक वस्तुओं के बनाने तक लाख का क्षेत्र विस्तृत है। आश्चर्य है कि हमारे इतने निकट और इतनी उपयोगी वस्तु का निर्माता केवल एक निरीह कीड़ा है जो आध इंच से बड़ा नहीं!

भारत प्रमुख उत्पादक

कच्ची लाख के विश्व-उत्पादन का ८५ प्रतिशत भाग भारत में होता है। यहाँ से इसके उत्पादन का ९०प्रतिशत विदेशों को भेजा जाता है। शेष उत्पादक देश हैं श्रीलंका, बर्मा और मलाया। भारत में भी विभिन्न देशों के मुकाबले अकेले छोटा नागपुर से ६० प्रतिशत उत्पादन होता है। हमारे यहाँ यह अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। वेदों में इसका उल्लेख ओषधि के रूप में किया गया है। महाभारत में तो उल्लेख है ही कि पाण्डवों को मारने की नीयत से दुर्योधन ने लाक्षागृह अर्थात् लाख का महल बनवाया था। मध्यकाल में लाख का उपयोग कपड़े रंगने, चूड़ियाँ बनाने तथा काठ के खिलौनों पर रंग करने के लिए होता था।

लाख का कीड़ा

लाख के कीड़े (lac insect) को जन्तु विज्ञान में लैक्सिफर लेक्का (*laccifer lacca*) कहते हैं। यह अधिकांश भारत, बर्मा तथा श्रीलंका में पाया जाता है। जन्तुविदों का प्रथम ध्यान इनकी ओर १९०१ में आकर्षित हुआ। तब से इनकी जीवन-क्रियाओं पर सूक्ष्म अध्ययन जारी है। १९३५ में नामकुम (बिहार) में प्रथम लाख-अनुसन्धानशाला खोली गयी। यह स्थान राँची के निकट है। इस अनुसन्धानशाला के दो प्रमुख भाग हैं। एक में लाख के कीड़े उपजाये जाते हैं और दूसरे में रासायनिक परीक्षण किये जाते हैं। प्रयत्न यह रहता है कि इसकी 'कुसुमी' नामक सर्वोत्तम जाति अधिकाधिक उत्पन्न की जाए, क्योंकि विदेशों की माँग उसी के लिए अधिक रहती है।

लाख के कीड़े की विशिष्ट ग्रन्थियों से जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्राव निकलता है वही लाख के रूप में प्राप्त होता है। यह कीड़ा परजीवी है और जिन विशेष प्रकार के पौधों पर पलता है, उन्हीं का रस चूस-चूसकर जीवन निर्वाह करता है।

लाख की पैदावार

केवल मादा ही लाख स्रवित करती है। प्रौढ़ मादा स्वयं को एक बाँबी में बन्द कर लेती है और अण्डे देना प्रारम्भ करती है। अण्डों की संख्या एक बार में २००से १००० तक पहुँच जाती है। बाँबी के खुले छिद्र से अण्डों से तैयार हुए गिराड़ निकल-निकलकर पेड़-पौधे पर पलना प्रारम्भ कर देते हैं। ये डिम्ब एक इंच में २०० से भी अधिक संख्या में छत्ते के रूप में एकत्र रहते हैं। ज्यों-ज्यों ये रस चूसते जाते हैं, अपनी ग्रन्थियों से राल जैसा पदार्थ निकालते जाते हैं। इन गिराड़ों को लम्बे समय तक के लिए एक ही डाल पर रहने नहीं दिया जाता बल्कि उस डाल को काट कर दूसरे पेड़ की डाल से बाँध देते हैं ताकि उस पेड़ पर भी ये फैल जाएँ।

अच्छी लाख प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि ये डिम्ब स्वस्थ रहें।

लाख का कीड़ा

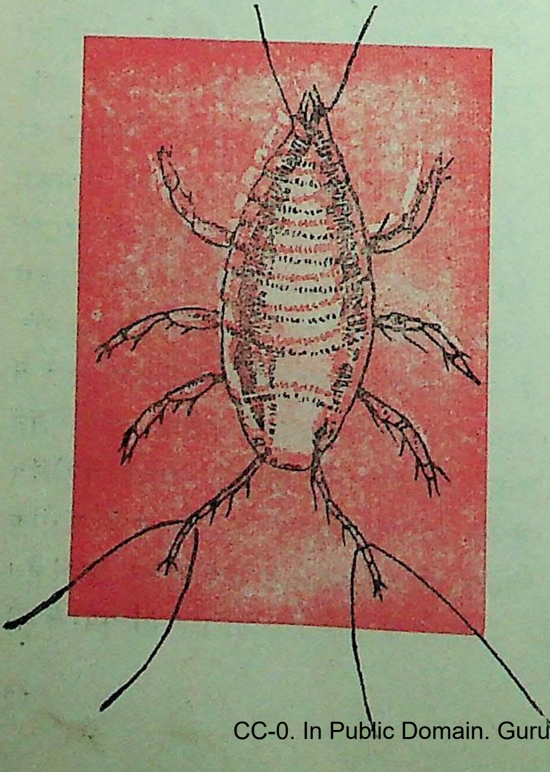

अतः इन्हें हवादार, शीतल तथा छाया के स्थानों पर रखा जाता है और आवश्यकता पड़ने पर बन्द टोकरियों तथा बोरियों में भी रखा जाता है। लाख का नर-कीट तो केवल प्रजनन के उपयोग में आता है क्योंकि मादा से संयोग करने के पश्चात् ही वह समाप्त भी हो जाता है। बाँबी में अकेली मादा तब तक लाख उत्पन्न किये रहती है जब तक वह जीवित रहे।

पेड़ की शाख से उतारी हुई लाख कच्ची लाख कहलाती है और पिस जाने पर लाक्षा-चूर्ण बन जाती है। शोधित किये जाने पर इसे चमड़ा भी कहते हैं। भारत में प्रति वर्ष उत्पादित ४३००० टन कच्ची लाख से ३२००० टन शुद्ध चमड़ा प्राप्त किया जाता है।

लाख-कीट के प्रमुख पोषक वृक्ष

पलाश, बरगद, बेर, कुसुम, अरहर, घोंट खैर और जलारी वे मुख्य पेड़-पौधे हैं जो लाख के कीड़ों को आश्रय देते हैं। सर्वोत्तम लाख कुसुम वृक्ष पर पलने वाले कीटों से प्राप्त होती है। उसे कुसुमी लाख कहते हैं। अन्य पेड़ों पर पलने वाले कीटों की लाख मध्यम प्रकार की होती है जिसे रंगीनी लाख कहते हैं। खैर अवश्य ऐसा पेड़ है जिस पर दोनों प्रकार के कीट पल सकते हैं। पेड़ से लाख की वर्ष भर में दो प्रकार की दो-दो फसलें प्राप्त होती हैं। उनके तैयार होने के समय भी विभिन्न होते हैं। यों एक वर्ष में कुल चार अर्थात् दो फसलें कुसुमी की तथा दो रंगीनी की प्राप्त हो जाती हैं।

आर्थिक महत्त्व

भारत के लिए लाख का उद्योग आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ४० लाख से भी अधिक व्यक्ति इसी उद्योग से आजीविका प्राप्त करते हैं। लाख के उत्पादन का ९० प्रतिशत विदेशों को भेजा जाता है उससे हमारे देश को लगभग ८ करोड़ रुपये के मूल्य की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकार के पक्षी

कुँवर सुरेशसिंह

शिकार के पक्षियों में केवल वे ही पक्षी आते हैं जिनमें कुछ खास गुणों का समावेश हो। हमारे देश में बत्तखें, कबूतर तथा हारिल भी शिकार के पक्षी माने जाते हैं क्योंकि एक तो इनका मांस कम स्वादिष्ट नहीं होता। दूसरे इनके शिकार में ज्यादा परेशानी नहीं उठानी पड़ती। वास्तविक शिकार-पक्षियों को निम्न पाँच भागों में बाँटा गया है. १. मुर्गियाँ, २. तीतर, ३. भट-तीतर, ४. बटेर तथा ५. लवे।

इन पक्षियों की शक्ल-सूरत, रंग-रूप, कद, स्वभाव और रहन-सहन में एक दूसरे से इतना भेद रहता है कि केवल देखकर कोई सरलता से नहीं पहचान सकता। शिकार के इन पक्षियों की चोंच छोटी, मजबूत तथा सिरे पर कुछ झुकी हुई रहती है। चोंच की जड़ के पास चढ़ी हुई खाल पर नथुने के छेद साफ दिखाई पड़ते रहते हैं। इनके डैने छोटे और घूमे हुए रहते हैं तथा पूँछ छोटी, बड़ी सभी तरह की होती है। इनके पाँव छोटे और मजबूत होते हैं और काफी ऊपर तक रोयों से ढँके रहते हैं। इनमें कुछ पक्षियों के पाँवों पर पीछे की ओर १-२ काँटे से निकले रहते हैं जो लड़ाई के समय आत्मरक्षा के काम आते हैं।

इन पक्षियों का शरीर गठीला और वजनी होता है। अपने छोटे डैनों के कारण ये तेज तो उड़ लेते हैं परन्तु अधिक दूर नहीं। कुछ पक्षियों की लम्बी पूँछ उड़ते समय बाधा पहुँचाती है। अतः थोड़ी ही दूर उड़कर उन्हें नीचे उतर आना पड़ता है। इनमें मादा को रिझाने के लिए जहाँ नर पक्षी को सुन्दर और भड़कीली पोशाक मिली है, वहाँ मादाएँ भी चितली या मटमैले रंग की होती हैं और उन पर दुश्मनों की नजर आसानी से नहीं पड़ने पाती। ये सब पक्षी पानी की अपेक्षा धूल में लोटना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि उससे इनके बदन की कुटकियाँ आदि मर जाती हैं। इन पक्षियों का मुख्य भोजन अनाज के दाने, बीज, जड़ें तथा कीड़े-मकोड़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुंगी

मुर्गियाँ

मुर्गियों का वर्ग काफी बड़ा है जिसमें मोर के अलावा जंगली मुर्गियाँ (कस्तूर और चकोत्री) तथा पहाड़ी मुर्गियाँ सम्मिलित हैं। जंगली मुर्गी शक्ल-सूरत में पालतू मुर्गी जैसी ही होती है। छोटी मुर्गी सामान्य मुर्गी से छोटी और रंग-रूप में तीतर से मिलती-जुलती होती है। पहाड़ी मुर्गियाँ रंग-बिरंगी, सुन्दर तथा भड़कीली पोशाक वाली होती हैं। इनमें 'लुंगी', 'मोनाल' तथा 'चेड़' बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका शिकार शिकारी कुत्तों की सहायता के बिना नहीं हो पाता।

भूरा तीतर

तीतर

इनका भी वर्ग काफी विस्तृत है। इनकी १५-२० तरह की विभिन्न जातियाँ हैं। ये भूरे, मटमैले तथा चितले रंग के पक्षी कद में कबूतरों से कुछ ही बड़े होते हैं। ये जंगलों, पहाड़ों,

पहाड़ी मुर्गी

खुले मैदानों तथा बर्फीले क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं। कहीं-कहीं ये जोड़ों और कहीं छोटे-छोटे गिरोहों में रहते हैं। इनमें सामान्य भूरे और काले तीतरों के अतिरिक्त चकोर, केहा, सिसी, पिउरा, रोली और जंगूरिया प्रसिद्ध तीतर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

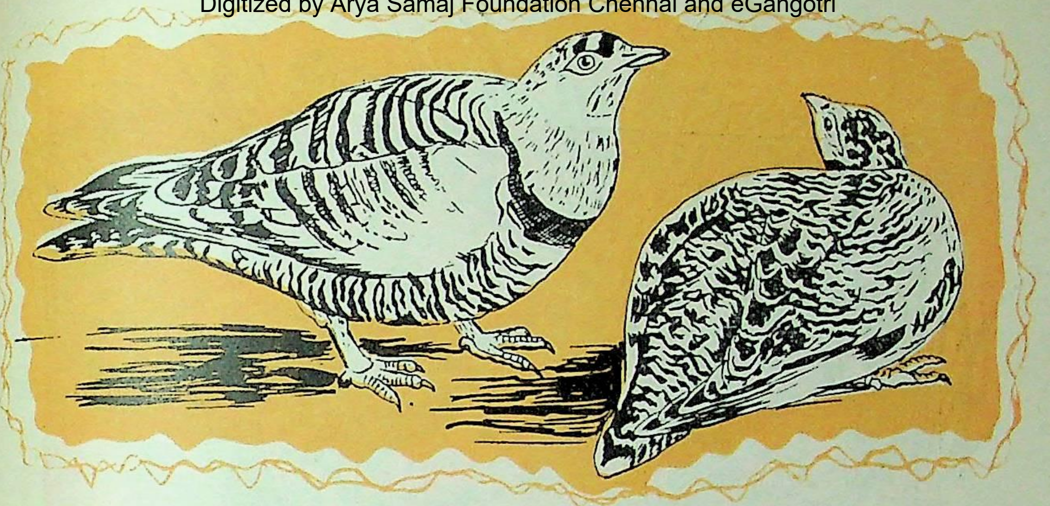

भट-तीतर

भट-तीतर

ये अपने ढंग के निराले पक्षी हैं। ये मटमैले, चितले रंग के होते हैं। इनके पाँव छोटे और कद कबूतर के बराबर होता है। ये खुले पठारों पर प्रायः छोटे-बड़े गिरोहों में रहते हैं। शिकारी को देखकर जमीन में ये ऐसे छिप जाते हैं कि इन्हें ढूँढ़ निकालना कठिन होता है।

बटेर

ये पक्षी तीतर से कुछ छोटे और लवे से कुछ बड़े होते हैं। रंग में ये भी भूरे, मटमैले और चितले होते हैं। ये जंगलों, पहाड़ों तथा घास के मैदानों में रहते हैं। इनमें घाघस, चिनिग, गिरजा तथा गोपाल प्रसिद्ध जातियाँ हैं।

लवा

ये पक्षी कद में छोटे हैं और इनका वर्ग भी छोटा ही है। हमारे यहाँ केवल पाँच प्रकार के लवे पाये जाते हैं। ये पक्षी बटेर से छोटे, मटमैले-चितले रंग के होते हैं। ये भी जंगलों

बटेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा लवा

पहाड़ों ग्रौर घास के मैदानों में पाये जाते हैं। इनमें कुकनी और सरसैया बहुत प्रसिद्ध हैं।

चहे

चहे भी शिकार के पक्षी हैं। शायद ही कोई शिकारी हो जो इनसे परिचित न हो। हमारे देश में इनकी आठ जातियाँ पायी जाती हैं। इनमें कुछ तो बारहमासी हैं जो यहीं रहते हैं और कुछ ऐसे हैं जो सर्दियों में बाहर से आते हैं।

चहे कद में कबूतर जैसे होते हैं। इनकी आँखें बड़ी और सिर में काफी पीछे की ओर रहती हैं। ये चितले रंग के पक्षी हैं। इनकी पीठ के पर प्रायः काले होते हैं। इनकी चोंच लम्बी और कुछ गोलाई लिए रहती है।

छोटा चहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा चहा

इनके चोंच का ऊपरी पल्ला बड़ा और मोटा होता है। यह चोंच इतनी मुलायम होती है कि बिना इसे खोले ही चहा ऊपरी सिरे को अपनी इच्छानुसार उठा-गिरा सकता है।

चहों के नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इनके बच्चों में भी अधिक रंग-भेद नहीं रहता। ये अधिकतर भूमि पर ही रहते हैं। इनके बच्चे अण्डों से निकलते ही दौड़ने-फिरने लगते हैं। स्वभाव से ये कीट भक्षी हैं। कीड़े-मकोड़ों के अतिरिक्त छोटे-छोटे कटुए और घोंघे भी ये बड़े स्वाद से खाते हैं। ये अधिकतर रात में अपना पेट भरते हैं लेकिन बहुत खाऊ होने के कारण दिन में भी चराई करते रहते हैं। अपनी लम्बी चोंच को कीचड़

सारस

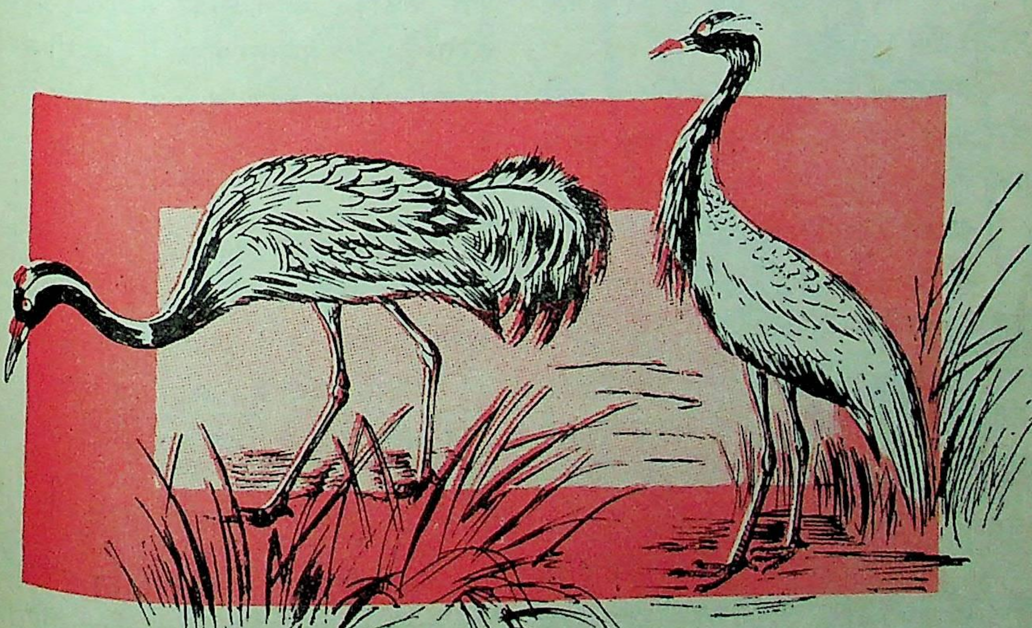

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

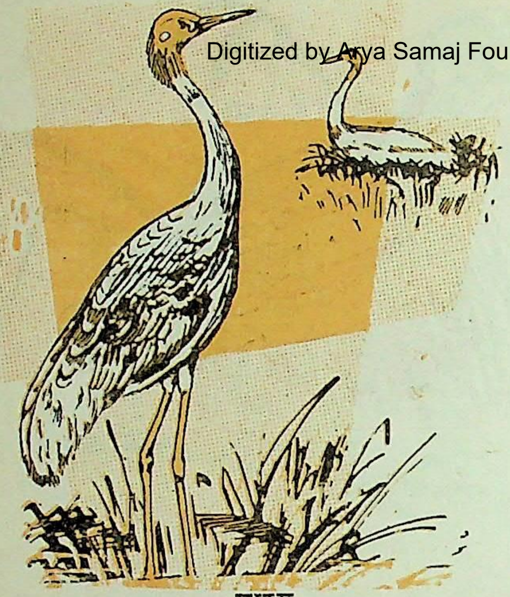

सारस

में डालकर जब ये कीड़े-मकोड़े चुगते हैं तब इनकी आँखें इधर-उधर देखने में बहुत सहायक होती हैं।

चहे झुण्ड बनाकर नहीं रहते। ये प्रायः अकेले या जोड़ों में ही दिखाई पड़ते हैं। ये भूमि पर ही अपने घोंसले बनाते हैं। एक बार में मादा चार अण्डे देती है। इनकी आठ जातियों में निम्न उल्लेखनीय हैं :

सिमतीतर—यह कद में सबसे बड़ा, लगभग १४ इंच का पक्षी है। इनके डैने चौड़े और पाँव छोटे होते हैं। कुछ दूरी तक पाँव परों से ढँके रहते हैं।

बनचहा—ये चहे सिमतीतर से छोटे और अन्य चहों से बड़े लगभग एक फुट के पक्षी हैं।

बगबद—इनके डैने छोटे होते हैं।

भंरका—ये दोनों पक्षी लगभग १०" कद के होते हैं।

घोरटा—यह कद में सबसे छोटा, लगभग ८" का पक्षी है। इसकी दुम नुकीली रहती है।

क्रौंच

ये पक्षी महाबक-वर्ग से भिन्न और भूमिचारी हैं। इनका रंग सफेद, स्लेटी और कलछौंह भी होता है। इनमें नर और मादा का रंग-रूप एक ही रहता है। महाबकों की तरह इनके डैने बड़े और दुम छोटी जरूर होती है लेकिन चोंच सर्वथा भिन्न होती है। इनकी नाक के छिद्र चोंच के बीच में होते हैं। इनके पाँवों का पिछला अँगूठा छोटा और कुछ ऊपर होता है जिससे वह लगभग बेकार ही रहता है।

क्रौंच के बच्चे अण्डे से बाहर निकलते ही इधर-उधर दौड़ने लगते हैं। उनका रंग बचपन में भूरा रहता है और सारा शरीर मुलायम परों से ढँका रहता है। इन्हें बहुत सरलता से पाला जा सकता है। घास-पात, अनाज के दाने, बीज, घोंघे, कटुए, मेंढक मछली आदि इनके मुख्य आहार हैं।

सर्दियों के प्रारम्भ में ये हमारे यहाँ आ जाते हैं और सर्दियाँ समाप्त होते-होते फिर लौट जाते हैं। उड़ने से पहले इन्हें जमीन पर दौड़ना पड़ता है और एक बार उठ जाने पर ये बहुत तेज उड़ लेते हैं। उड़ते समय महाबकों के समान इनकी भी गरदन और टाँगे बाहर की ओर निकली रहती हैं।

मादा को रिझाने के लिए नर पक्षी अपने पंख फैलाकर बहुत सुन्दर नृत्य का प्रदर्शन करता है। नृत्य समाप्त करके नर अपनी लम्बी गरदन को झुकाकर हवा में उछल जाता है और अन्ततः मादा को प्रसन्न कर लेता है।

यह भूमिचर पक्षी है। अतः अपना घोंसला जमीन पर ही रखता है। घोंसला देखने में ऊँचा घास-फूस और नरकुलों का ढेर-सा जान पड़ता है। मादा एक बार में दो-तीन अण्डे देती है जिन पर चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

जलकुक्कुट

जलकुक्कुट को पनकुकुरी भी कहते हैं। यह पानी के निकट ही सारा समय बिताती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस पतली छोटी चिड़िया की टाँग लम्बी और दुम छोटी होती है। यह अधिकतर अपनी दुम को सतर्क होते समय उठाती, गिराती रहती है। इसके पाँव के तीनों अगले और एक पिछला अँगूठा काफी लम्बा रहता है। कोई भी अँगूठा एक दूसरे से जुड़ा नहीं रहता। इसकी चोंच प्रायः लम्बी और सुदृढ़ रहती है और नथुने का छिद्र चोंच की जड़ के पास न होकर उसके सिरे के पास रहता है। इनमें से प्रायः सभी पक्षियों की आँखें अधिकतर लाल रहती हैं।

यह चिड़िया भूमिचारी होने के कारण सारा समय जमीन पर ही बिता देती है। कभी-कभी यह छोटी, ठिगनी झाड़ियों पर भी बसेरा ले लेती है। यह बखूबी तैरती और डुबकी तो लगाती ही है, जमीन पर भी दौड़ लेती है। इसकी उड़ान कमजोर होती है और उड़ते समय कुछ दूर तक इसके पैर नीचे की ओर लटकते रहते हैं। उड़ने से पहले इसे कुछ दूर तक पानी की सतह पर दौड़ना पड़ता है।

इनमें से कुछ चिड़ियाँ मौसमी हैं जो जाड़ों में यहाँ आकर जाड़ा समाप्त होते-होते यहाँ से लौट जाती हैं। कुछ बारहमासी भी हैं जो यहाँ जलाशयों के निकट रहती हैं। पंख गिरने के समय इनके अधिकांश पंख एक साथ ही गिर जाते हैं जिससे ये कुछ समय के लिए उड़ नहीं पातीं। इनका भोजन कीड़े-मकोड़े और छोटे कटुए, घोंघे आदि हैं लेकिन ये घास-पात, दाना और बीज आदि भी खा लेती हैं। इनमें नर-मादा एक ही जैसे होते हैं। इनके बच्चे अण्डों से बाहर निकलते ही भागने-दौड़ने लगते हैं लेकिन कुछ दिन तो उसके माँ-बाप उन्हें स्वयं खिलाते-पिलाते हैं। इनका रंग अधिकतर कत्थई तथा कलछौंह रहता है।

ये बरसात में अण्डे देती हैं और उनके लिए अपना घास-फूस का घोंसला बनाती हैं। घोंसला पानी के किनारे जमीन पर ही रखा जाता है। मादा एक बार में कई चित्तीदार अण्डे देती है। इन्हें मुख्यतः तीन निम्न भागों में बाँटा जा सकता है:

१. **जलबोदरिया**—यह अपनी लम्बी चोंच के कारण आसानी से पहचानी जा सकती है। इनमें झिल्ली, खैरी जलबोदर, छोटी जलबोदर, चितली जलबोदर, स्लेटी जलबोदर, पहाड़ी जलबोदर, और भूरी जलबोदर उल्लेखनीय हैं।

२. **पनकुकुरिया**—ये अपनी छोटी चोंच के कारण अन्य जलकुकुरियों से अलग पहचानी जा सकती हैं। इनमें मुख्य हैं—पनकुकुरी, छोटी पनकुकुरी, खैरी पनकुकुरी, और गोदन।

जलमुर्गियाँ—इनकी चोंच मोटी होती है। इनमें से कुछ एक में चोंच की जड़ के पास एक चौड़ी, बड़ी-सी टिकली रहती है। इनमें निम्न पाँच चिड़ियाँ मुख्य हैं:

टीकी, जलमुर्गी, कैमा, कोरा, और डाउक आदि। ●

जलकुक्कुट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

आपसे मिलिये !

सुनते ही हम तपाक से अपना हाथ आगे बढ़ाते हैं, क्यों ? इतिहास कहता है कि पाश्चात्य देशों में पूर्वकाल में जब पुलिस-व्यवस्था प्रचलन में नहीं थी तब अँधेरी रातों को बाहर निकलना सुरक्षित नहीं होता था। प्रायः ही चोर, लुटेरों से सामना हो जाया करता था। अतः राहगीर भी शस्त्र लेकर ही चलते थे। अँधेरे में जब दो व्यक्ति मिलते थे तब दोनों अपने हथियार थामने वाले अर्थात दाहिने हाथ बढ़ाकर ज्ञात कर लेते थे कि विपक्षी मित्र है अथवा शत्रु। दोनों खाली हाथों के मिलने का अर्थ होता था मित्र-मिलन, न कि शत्रु-मिलन। क्रमशः वही प्रथा दो मित्रों के मिलने की प्रतीक बन गयी।

सागरों के पेट में लाखों जहाज

विगत २००० वर्षों से आज तक संसार के सप्त महसागरों द्वारा सैकड़ों, हजारों क्या, लाखों जहाज डकार लिए जाने के अनुमान की पुष्टि की गयी है। लन्दन के लाइड्ज संग्रहालय से प्राप्त विवरणों में उल्लिखित है कि सन् १९०२ से जहाजों के डूबने का औसत प्रति वर्ष लगभग ४०० का रहा है। इसी प्रकार फ्रान्स में प्राप्त विवरणों से ज्ञात किया गया है कि १९वीं शताब्दी तक यह औसत ३००० जहाज प्रति वर्ष का रहा है। यदि मध्यमान के लिए ५०० जहाज प्रति वर्ष का औसत मान लें तो पिछले २००० वर्षों में डूबे हुए जहाजों का स्थल-औसत प्रति १४ वर्ग मील में एक जहाज का रहेगा। इसका भी खण्डन करते हुए कुछेक विशेषज्ञों का मत है कि यह औसत कम से कम प्रति वर्ग मील, एक जहाज का होना चाहिए।

कृषक गिलहरियाँ

गिलहरियाँ भी एक प्रकार से वृक्षारोपण करके वन-प्रसारण में सहयोग देती-हैं। इनकी नींद महीनों की होती है और जाड़ों भर रहती है। उन दिनों अपना पेट भरने के लिए तथा बाहर की सर्दी से बचने के लिए ये जगह-जगह अनाजों और बीजों के भण्डार खेतों से घसीट-घसीट कर जमा कर रखती हैं। नींद खुलने पर इन्हें भटकना नहीं पड़ता किन्तु अनेक बार यह भी होता है कि ये अपने खजानों के स्थलों को भूल जाती हैं और जहाँ-तहाँ से गुजर कर लेती हैं। अनुकूल वर्षाजल तथा अन्य परिस्थितियाँ पाकर भूमिगत वे ही खजाने पौधे बनकर उग आते हैं।

आर्मडिलो के पुरखे

दक्षिण अमरीका का निवासी, चारों ओर से बख्तरबन्द, यह प्राणी जैसा आज है लाखों वर्ष पहले उससे कहीं भिन्न था। आज के नन्हें छह इंच से लेकर छह फुट तक के विशाल आर्मडिलो के वे पुरखे १० फुट लम्बे होते थे। उन्हें ग्लिप्टोडन (glyptoden) नाम दिया गया है। भारी और कड़ी ढाल से सुरक्षित तथा विकराल आकृति होते हुए भी ये जन्तु स्वभाव से शरमीले तथा सीधे-सादे हैं। निकट होने पर ये हानि नहीं पहुँचाते और पालतू हो जाने पर बड़े खिलवाड़ भरे बने रहते हैं।

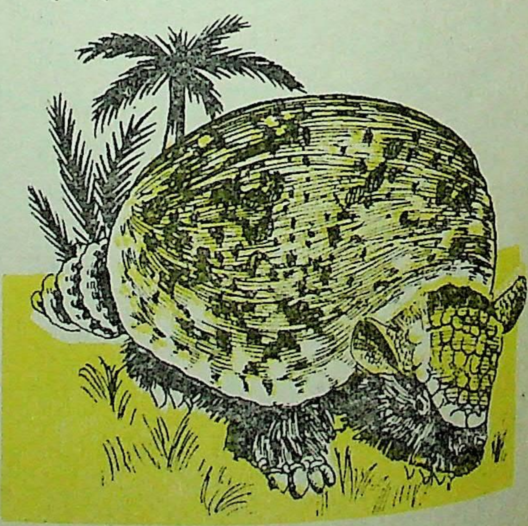

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

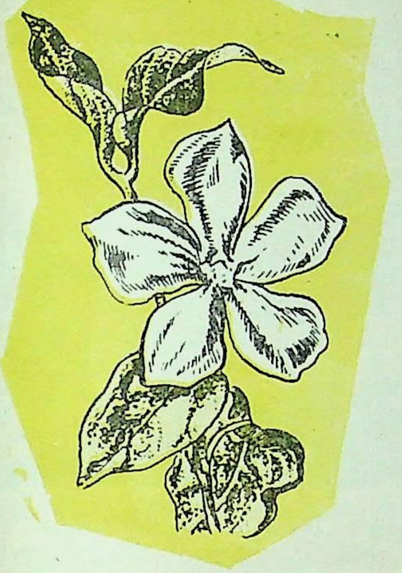

मृत्यु में अमरता का प्रतीक, यह फूल

इस फूल की सही उपमा देने के लिए कहा जा सकता है कि 'इधर झूम कर गाए जिन्दगी, और उधर है मौत खड़ी'। इस फूल की बारहमासी बेल पर सदा बहार रहती है। मनोरम नीली आभा लिये हुए उसके कोमल फूल (periwinkle) को इंग्लैण्ड निवासियों ने अमरता का प्रतीक माना है और मृत्युदण्ड पाने वाले व्यक्तियों ने सिर कटाने से पहले इसे पहना है। साइमन फ्रेजर उनमें से एक उदाहरण है जिसने १३०६ में इसी फूलों की माला सिर से बाँधकर मृत्यु का आलिंगन किया था।

दूसरी ओर इसकी बेल के सुदृढ़ तंतुओं को अमर दृढ़ता का प्रतीक माना गया है और मित्रों ने पारस्परिक मित्रता की तथा नवविवाहितों ने परस्पर निष्ठा की शपथ इसी की पत्तियाँ खाकर, इसी की माला पहनकर निभायी है।

एक दिन का जीना भी तो जीना है !

मेफ्लाई (mayfly) नामक मक्खी की गिराड़ावस्था तो सौ दिन चलती है किन्तु विकसित अवस्था के लिए एक ही दिन मिलता है। उसी एक दिन में यह सब कुछ कर गुजरती है और उसी दिन पूरा जीवन जीकर, प्रजनन सम्पन्न करके समाप्त हो जाती है—वंशानुक्रम चलाये रखने के लिए।

चमत्कारिक कुत्ता पुरस्कृत

अमरीका के एलेक्जेण्ड्रिया (वर्जीनिया) के पुलिस-विभाग का यह कुत्ता वास्तव में विलक्षण है। वर्ष का सर्वोत्तम कुत्ता घोषित होने का इसे गौरव प्राप्त है। इसकी विलक्षणता इसमें है कि गले में लटके हुए रिसीवर द्वारा यह अपने प्रशिक्षक के संकेत एक मील दूर से ग्रहण करके उन्हें पलक मारते ही कार्यान्वित कर देता है। परीक्षणों में अनेक बार इसे धोखा देने के लिए प्रशिक्षक के स्वर से स्वर मिलाकर बनावटी आदेश दिये गये, किन्तु इसने कभी धोखा नहीं खाया और वास्तविक आदेशों का ही पालन किया। अपने पुरस्कार को हस्तगत किये हुए गौरवपूर्ण मुद्रा में इस कुत्ते की छवि दर्शनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्ष उड़ान में ईंधन-सम्पूर्त्ति

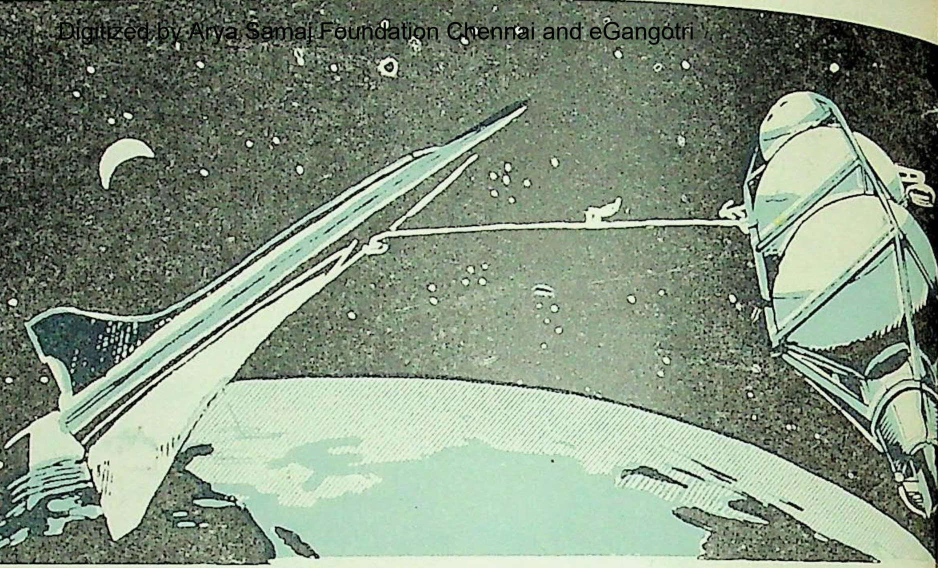

डा. महेन्द्रकुमार

संसार के सबसे बड़े, ८५००० टन भारी, १०३० फुट लम्बे और ११८ फुट चौड़े जलपोत, क्वीन मेरी को पंख लगाकर सितारों की सैर कराने की कल्पना कैसी रहेगी? जो अपने अन्तरिक्ष-यान में चन्द्रमा से लौटने तक की यात्रा के योग्य ईंधन लाद ले जाने की सोच रहे होंगे, उनकी कल्पना ठीक ऐसी ही कही जाएगी। ईंधन की उस विपुल मात्रायुक्त अति विशाल अन्तरिक्ष-यान बनाना तो नहीं, किन्तु उड़ा ले जाना अवश्य असम्भव रहेगा। फिर भी आगामी १०-१२ वर्षों में उड़ानें भरकर दिखानी हैं। इस संकल्प के रहते हुए हाथ पर हाथ धरे तो न बैठा जा सकेगा कि ईंधन की कल्पना ही दुरूह है, क्या करें! पृथ्वी का निकटतम ग्रह चन्द्रमा ही है, वह भी लगभग २॥ लाख मील से कम दूर नहीं। वहाँ पहुँचना और वहाँ से लौटना अर्थात् लगभग ५ लाख मील की यात्रा के योग्य ईंधन अपने साथ उड़ान भर रखना आज के अन्तरिक्ष-उड्डयन-विज्ञान के लिए सबसे बड़ा प्रश्न चिह्न है।

लक्ष्यपूर्ति की दिशा में

अनवरत प्रयोगों तथा अधिक परिश्रम के उपरान्त इस समस्या को भी सुलझाने की कुछेक युक्तियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। एक युक्ति द्वारा यान का वजन काल्पनिक ८५००० टन से घटाकर कुछ ही हजार टन तक और लागत हजारवें भाग तक उतारी जा सकेगी। इसके प्रयोगस्वरूप सामान्य आधुनिक यानों के लिए तो यह संभव किया ही जा सका है कि ईंधन के लिए यात्रा-भंग किये बगैर ही वे पृथ्वी-प्रदक्षिणा जैसी लम्बी से लम्बी उड़ान भी भर सकें। बोइंग बी-५० लकी लेडी (Boeing B-50 *Lucky Lady*) ऐसा ही उल्लेखनीय यान है जो यात्रा के मध्य, साथ में उड़ते हुए तेल-यान से ईंधन

Boeing B-50 *Lucky Lady* यान ने ऊर्ध्वाकाश में उड़ते-उड़ते ही टैंकर-यान से ईंधन प्राप्त करते हुए भू-प्रदक्षिणा पूरी की

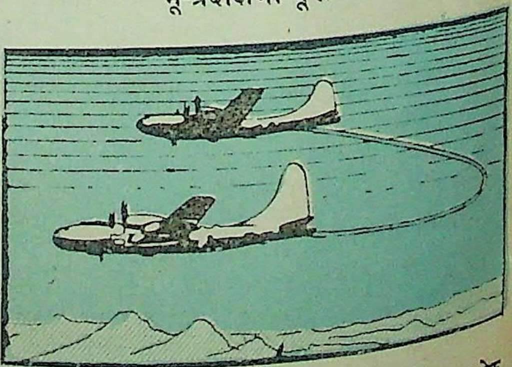

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करता रहा और बीच में यात्रा भंग होने का अवसर ही नहीं दिया । इसी प्रकार अतलांतिक महासागर को निर्बाध लांघ जाने वाले जेट-यान तथा बम-वर्षक यान उड़ान के दौरान में ही ईंधन प्राप्त कर लेते हैं ।

यान, यान ही है राकेट, राकेट

सामान्य वायुयानों के लिए यह व्यवस्था जितनी सहज हो सकती है, राकेट के लिए उतनी ही कठिन है । अन्तरिक्ष में पेट्रोल-पम्प जैसे स्टेशन कैसे खड़े किये जा सकेंगे जहाँ राकेट मोटरकार की भाँति बीच बीच में ईंधन-सम्पूर्ति कर ले ? आज तो यह शंका कठिन है किन्तु आगामी १०-२० वर्षों में अन्तरिक्ष-उड्डयन विज्ञान के लिए यह असम्भव न रह जाएगा कि अन्तरिक्ष में ईंधन-स्टेशनों की एक शृंखला खड़ी की जा सके ।

इस प्रयोजन के लिए लगभग ७०००टन भारी एक त्रिखण्डी राकेट ऐसा बनाया जाएगा जिसके प्रथम खण्ड में अन्तरिक्ष-स्टेशन बनाने की सामग्री रहेगी । दागे जाने के बाद निर्धारित ऊँचाई पर पहुँचते ही वह राकेट कक्षापथ में अपना सामान खाली करके पुनः उसी प्रकार नया सामान लाने के लिए पृथ्वी की ओर लौट पड़ेगा । उस कक्षापथ में सामान के साथ पहुँचे हुए कुशल इंजीनियर अन्तरिक्ष स्टेशन खड़ा करना प्रारम्भ कर देंगे और पुनः आनेवाले राकेट की प्रतीक्षा में रहेंगे ।

वह स्टेशन पृथ्वी से लगभग ७०० मील की ऊँचाई पर रहेगा । दूसरे दौर में सामान ले जानेवाला वही राकेट-खण्ड ईंधन का भंडार ले जाएगा और उसी कक्षापथ में पहले अन्तरिक्ष-स्टेशन के समान्तर १६००० मील प्र. घ. के वेग से चक्कर लगाता रहेगा । अपनी विलक्षण यंत्र-सज्जा के बल पर वह उसके निकट पहुँचता जाएगा । निश्चित निकटता आते ही उस खण्ड का इंजन बन्द कर दिया जाएगा और दोनों यान समान गति से बगैर अपना ईंधन व्यय किये उस कक्षा में घूमते रहेंगे।

निश्चित घड़ी पर उस खण्ड की एक खिड़की खुलेगी और अन्तरिक्ष-परिधान पहने दो व्यक्ति एक लम्बे पाइप का सिरा थामे हुए बाहर तैर आएँगे । अपनी राकेट-पिस्टल की सहायता से वे रास्ता काटते हुए स्टेशन तक पहुँच जाएँगे और उसी समय बाहर निकलती

वायुचापित छोटी-छोटी ईंधन टंकियों को भी यान में पहुँचाकर अन्तरिक्ष में ईंधन-सम्पूर्ति सम्पन्न की जा सकेगी

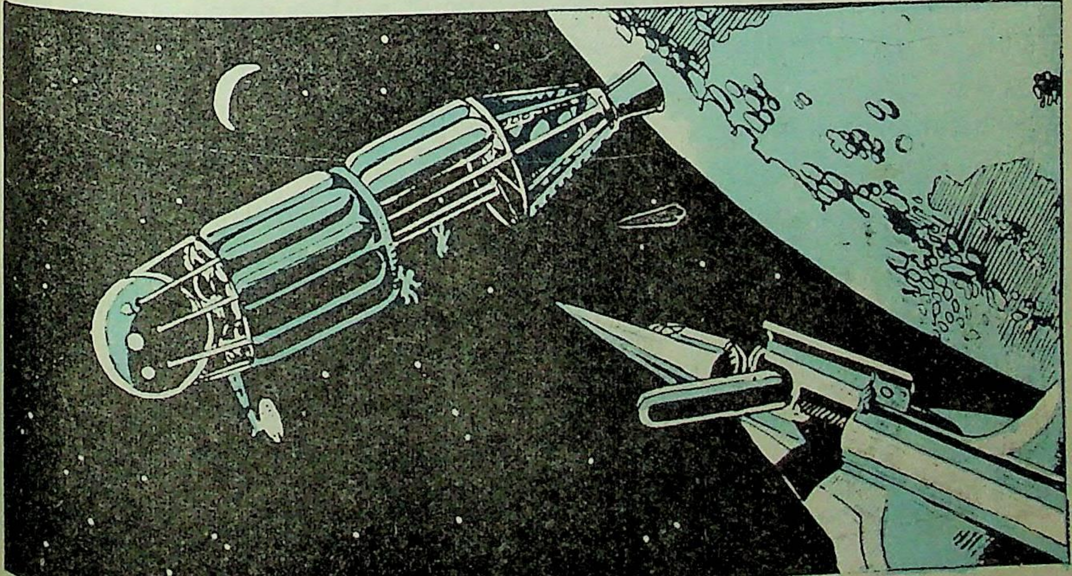

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई उसकी नली में पाइप का सिरा फिट कर देंगे। शक्तिशाली पम्प द्वारा तेल का भण्डार उस खण्ड से अन्तरिक्ष स्टेशन के टैन्क में पहुँचने लगेगा और आधे घण्टे से पूर्व ही वह अपना कार्य समाप्त करके, पाइप समेट कर पृथ्वी की ओर लौट पड़ेगा।

पाइप जोड़ने की उपरोक्त विधि के अतिरिक्त एक अन्य विधि भी संभव हो सकेगी। वायुचापित छोटी टंकियाँ विशेष रूप से ऐसी बनायी जाएँगी जिन्हें ईंधन से भर कर राकेट के फ्रेम में बाहर की ओर फिट कर दिया जाएगा। अन्तरिक्ष स्टेशन पर पहुँच कर वे एक-एक करके अपनी टंकियाँ वहीं दे देंगे और लौट आएँगे। देखने में शायद बगैर स्ट्रीमलाइनिंग की वे टंकियाँ खूबसूरत न लगें किन्तु स्ट्रीमलाइनिंग की इसलिए आवश्यकता न रहेगी कि अन्तरिक्ष में गत्यावरोधन के लिए वायुमण्डल तो होगा ही नहीं!

१६००० मील प्र. घ. के वेग से सनसनाते हुए दो यानों में एक से दूसरे तक ईंधन पहुँचाना बड़ी विकट कल्पना कही जा सकती है। इसमें भी रहस्य यह है कि यह तीव्र गति इस कार्य में किंचित भी अवरोधक नहीं बनेगी, क्योंकि दोनों यान प्रायः ही गतिहीन प्रतीत होंगे। इसे सरल रूप में समझना हो तो याद कीजिए कि सुबह से अब तक आपने ज़ब-जब कुछ वस्तुएँ दूसरों को दीं, तब-तब किसी वस्तु के छूट-गिरने अथवा आपके पाँव डगमगा जाने का आभास हुआ! यदि नहीं हुआ तो क्यों; जबकि जिस पृथ्वी (ग्रह) पर आप खड़े हैं, वह १६००० के बजाय ५५००० मील प्र. घ. के वेग से अन्तरिक्ष में चक्कर काट रही है? उलटे, इस से तो यह आशा की जा सकती है कि वायुमण्डल की अपेक्षा निर्वात अन्तरिक्ष में ईंधन-सम्पूर्ति और भी सरल रहेगी।

उड़ानगत ईंधन-सम्पूर्ति के लिए यह भी एक यंत्र है जो अन्तरिक्ष की उड़ानों में बहुमूल्य सिद्ध होगा

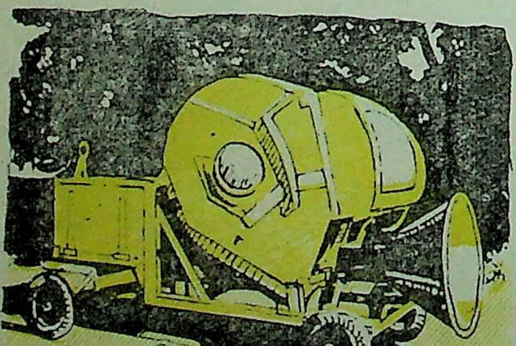

अन्तरिक्ष-स्टेशन से चन्द्रमा की ओर

ईंधन-यान की इस प्रकार कुछेक उड़ानों के पश्चात् चन्द्र-राकेट अपने ईंधन के स्टाक से सम्पन्न होकर अन्तरिक्ष-स्टेशन से चन्द्रमा की ओर उड़ने को तैयार हो जाएगा। यहाँ एक नयी शंका खड़ी हो सकती है कि पृथ्वी से तो अभी केवल ७०० मील ही उठकर आये हैं और चन्द्रमा की २॥ लाख मील की दूरी में कोई अन्तर नहीं पड़ा; फिर कितने ईंधन से हमारी मंजिल पूरी होगी? इसके लिए यह समझना आवश्यक है कि एक ओर तो पृथ्वी को लपेटे हुए वायुमण्डल का गत्यावरोध और दूसरी ओर अन्तरिक्ष का निर्वात विस्तार, इन दोनों को दृष्टि में रखते हुए वह प्रारम्भिक ७०० मील की ही यात्रा आधी से अधिक ही प्रमाणित होगी। अतः शेष भाग तो आधे से भी कम के लगभग रह जाएगा।

और, अब तो नये ईंधन से युक्त हमारा चन्द्र-राकेट अपनी गति भी ड्योढ़ी से अधिक बढ़ा देगा। १६००० मील प्र. घ. की गति से पृथ्वी के कक्षापथ में घूमता हुआ यह यान, पृथ्वी के आकर्षण-बल से भाग-छूटने के लिए २५००० मील प्र. घ. की तो गति कर ही लेगा। यों, चन्द्रमा उसके लिए पहुँच के बाहर न रहेगा और १०-२० वर्षों के अन्दर ही शायद आज की पीढ़ी के लिए भी, चन्दा मामा (दूर का नहीं) पास का हो जाएगा और हमारा स्वप्न साकार हो जाएगा। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !

यह नया अंक तुम्हारे हाथ में तब पहुँच रहा है जबकि १९६३ का वर्ष अपने अन्तिम सोपान पर है। इसमें सन्देह नहीं कि यह वर्ष विज्ञान की प्रगति में सुनिश्चित प्रगति का सूचक रहा है, विशेषतः अन्तरिक्ष-उड्डयन-विज्ञान में। हम आशा करें कि आगामी वर्ष हमारे चन्द्र-अभियान के प्रयासों को आश्चर्य-जनक गति प्रदान करेगा।

प्रति मास, प्रत्येक अंक, प्रति पाठक को कितना पसन्द आता है, यह सार स्वरूप निम्न पत्रों से ज्ञात हो जाएगा :

जसीडीह से विनोदकुमार (६७१७) टीकमगढ़ से कन्हैयालाल (१०४३२) तथा इलाहाबाद से प्रदीपकुमार (४१३५) ने अक्टूबर अंक में **हेलीकाप्टर** तथा **टेलस्टार** लेख अधिक पसन्द किये हैं। **सागर में ३३०० वर्ष, भोजन की तलाश** तथा **पास्कल** की जीवनी ने दिल्ली के श्रवणकुमार (१३००) और सहारनपुर के मनवेन्द्रसिंह (६०३३) को प्रभावित किया है। इसी प्रकार पुष्कर से निरंजनप्रकाश (३६१६) और दिल्ली से स्नेहप्रभा (१४२२) ने लिखा है कि **कीटोन और निऑन गैस** बहुत अच्छे लगे।

प्रायः ही तुम्हारे पत्रों में विज्ञान के नवीन विषयों पर विज्ञान-लोक में दिये गये लेखों के प्रति विशेष रुचि प्रतिलक्षित होती है। यह पाठकों की परिष्कृत रुचि का प्रतीक है और ससम्मान इस ओर आवश्यक ध्यान दिया जा रहा है।

'तुम्हारी कलम से' स्तम्भ के लिए आती हुई रचनाओं में अब भी विविधता तथा नवीनता का अभाव है और अधिकतर छपे-पुराने विषय ही सामने आते हैं। इसीलिए कोई-कोई ही रचना प्रकाशित करना सम्भव हो पाता है। इसी प्रकार **'करो और देखो'** के लिए भी ऐसे ही विषय चुनने चाहिए जो सर्वथा नवीन हों और जिनको बनाना सहज तथा उपयोगी सिद्ध हो।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४५ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

प्रमोदकुमार शर्मा (११८५) इलाहाबाद; गजेन्द्रपालसिंह (१६०५) मेरठ; रणजीतसिंह (४७२४) नई दिल्ली; शान्तिलाल सरणोत (६४७४) उदयपुर; सुरेशकुमार गुप्ता (७१९०) अमृतसर; मोहिनी शहानी (७८२७) रांची।

द्वितीय पुरस्कार

सुधीरकुमार राठौर (१६१९) आगरा; गोपाल माधव (२३७९) मेरठ; शीतलासहाय शुक्ल (२३८९) लखनऊ; व्रजेश्वरप्रसाद शर्मा (३९७२) ललितपुर; गोपालराव पारेख (५१७२) सोनेगाँव; मनवेन्द्रसिंह नारंग (६०३३) सहारनपुर; राधेलाल गुप्ता (६४३७) बुलन्दशहर; नरेश मजीठिया (७५५६) अमृतसर; सज्जनसिंह सुराना (७६८१) उदयपुर; वल्लभदास पारेख (७७५८) उदयपुर।

तृतीय पुरस्कार

भुवनेश्वर गुप्ता (९१४) आगरा; प्रफुल्लराय (९०९८) बरेली; दिलीप जालान (२७९२) कलकत्ता; प्रदीपकुमार (४१३५) इलाहाबाद; सत्यपाल अग्रवाल (५३२३) देल्ली; नरेन्द्र बंसल (७८२८) आगरा; नारायणकुमार खरे (८११७) टीकमगढ़; शैलेन्द्र कुमार कसेरा (८४९५) कानपुर; ओमप्रकाश गुप्ता (९५१५) मेरठ; अवधेशकुमार बाजपेई (९८२२) आगरा; रमेशचन्द्र घरिया (१०१४८) इन्दौर; हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) लखनऊ; धीरेन्द्रकुमार सक्सेना (११८६६) करहल; कु. कल्पना श्रीवास्तव (११८६७) लखनऊ।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ४७

नाम ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

सुशीलकुमार
(स. सं. ६६०१)

सतीशकुमार
(स. सं. ७२३८)

रमेशचन्द्र
(स. सं. ८६५०)

राधेश्याम
(स. सं. ८६८३)

७३६४ ब्रिजेशकुमार (१५) झांसी, ६५ जमालऐंघर (१६) बड़ा बाजार, ६६ सुरेन्द्रकुमार (१९) सिवनी, ६७ कैलाशचन्द्र (१८) नई दिल्ली, ६८ सुदर्शन (१८) उतरौंत, ६९ शत्रुघ्नप्रसाद (१५) कदमा, ७० द्वारिकादास (१६) निमार, ७१ त्रिलोकनाथ (१६) बहराइच, ७२ चरणजीत (१५) सिरसा, ७३ गयाप्रसाद (१६) रायपुर, ७४ प्रतापकुमार (१३) शिवपुरी, ७५ गुरुवचनसिंह (१७) कलकत्ता, ७६ कल्याणमय (१०) झांसी, ७७ रामनिवास (१२) जमशेदपुर, ७८ लक्ष्मीप्रसाद (१३) फारबिसगंज, ७९ देवकृष्ण (२०) झाडोल, ८० अशोककुमार (१५) कानपुर, ८१ सन्तोषकुमार (१६) सागर, ८२ अरविन्दकुमार (२०) कटनी, ८३ धीरेन्द्रकुमार (१६) जोझारिया, ८४ धन्नालाल (१६) चन्द्रावतीगंज, ८५ ईश्वरप्रसाद (१५) खरसिया, ८६ बलराम (१७) नेवरा, ८७ धनेश्वरप्रसाद (१७) सारंगगढ़, ८८ शिवानन्द (१५) महादेवस्थान, ८९ महेशचन्द्र (१५) श्योपुरकलां, ९० नन्दकिशोर (२०) राजनांदगांव, ९१ सुभाष (१३) इचलकरंजी, ९२ रविन्द्रकुमार (१८) दिल्ली, ९३ कृष्णकुमार (१७) पुखरायाँ, ९४ राधेश्याम (१६) थानेसर, ९५ हरीचरण (१६) सागर, ९६ देवेन्द्रकुमार (१७) सागर, ९७ नरेन्द्रप्रसाद (१३) बटसार, ९८ नित्यानन्द (१५) प्रसस्त डीह, ९९ मोहनप्रसाद (१२) जोगियारा, ७४०० हर्षदराय (१६) रायपुर, १. आर. श्रीनिवासन (१५) जमशेदपुर, २ धीराजवरा (२३) आमवारी, ३ बिड़दीचन्द (१७) बिल्हा, ४ लक्ष्मीनारायण (१९) भागलपुर, ५ कु. शकुन्तला (१५) बरारीपुरा, ६ कुमारी आशा (१४) सिवान, ७ ज्ञानचन्द (१२) ब्यावर, ८ सुबोधशंकर (१६) टिटरा, ९ कु. कुमुदनी (१५) बाह, १० गनेश (१६) रामपुर बाघलान, ११ प्रेमकुमार (१३) कालका, १२ गोविन्दनारायण (१२) ब्यावर, १३ राजकुमार (१३) ब्यावर, १४ अरविन्दकुमार (१२) अनिसाबाद, १५ मोहन (१४) सिरोही, १६ कृष्णकुमार (११) रायपुर, १७ सुदर्शनचक्र (१०) रायपुर, १८ किशोरनारायण (१३) कोठिया, १९ उमेशचन्द्र (१६) जयपुर, २० जयमूर्ति (१४) मेहनाजपुर, २१ पांडुरंग (१५) इंदौर, २२ मयूरचन्द्र (१७) जूनागढ़, २३ सुदेशकुमार (१३) महू, २४ सन्तसिंह (२३) अजनी, २५ बलेन्द्रसिंह (१४) कलकत्ता, २६ पदमचन्द (१२) अजमेर, २७ अनिल बख्शी (११) मेरठ, २८ राजेन्द्रकुमार (१५) टीकरी, २९ श्यामप्रकाश (१६) बस्ती, ३० राकेशकुमार (१३) कानपुर, ३१ आद्याप्रसाद (१६) नैंकिनिया, ३२ विनोदकुमार (१३) हावड़ा, ३३ बेचन (११) मधुबनी, ३४ कैलाशचन्द्र (१२) सागर, ३५ रतनलाल (१६) जोधपुर, ३६ बृजबिहारीलाल (१२) जोधपुर, ३७ दिनेशचन्द्र (१५) जगदीशपुर, ३८ श्रिपतिराव (१६) डोंगरगढ़, ३९ संजीवकुमार (९) मेरठ, ४० मांगीलाल (१६) ब्यावर, ४१ अनिलप्रकाश (१७) अलीगढ़, ४२ विभाकर (१३) रांची, ४३ पारसमल (१८) जावद, ४४ ललितकुमार (१०) पूना कैन्ट, ४५ कृष्णस्वरूप (१३) छिन्दवाड़ा, ४६ राधेलाल (१३) बुलन्दशहर, ४७ खजानचन्द (१४) अलमोड़ा, ४८ बलवन्तसिंह (११) गया, ४९ कु. रीना (१२) आगरा, ५० ब्रजेश्वरलाल (१८) सुपौल, ५१ केन्द्रनारायण (१४) डुमरिया, ५२ राघवेन्द्रकुमार (१२) इनई, ५३ बलवीर (२३) पटना, ५४ नन्दकिशोर (१५) जामई, ५५

विमलकुमार
(स. सं. ८६८८)

रणविजय सिंह
(स. सं. ६१३६)

अरुणकुमार
(स. सं. ६२१६)

महेशकुमार
(स. सं. ६२३१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमेशकुमार
(स. सं. ९४७६)

सुरेशचन्द्र
(स. सं. १०१९४)

शंकरलाल
(स. सं. १०१९८)

अक्षयकुमार
(स. सं. १०५०२)

कमल कुमारी (८) देसरी, ५६ त्रिलोकीप्रकाश (१३) [illegible] ५७ हरीशकुमार (२३) रायपुर, ५८ प्रदीपकुमार (१४) मुरादाबाद, ५९ सत्यनारायण (१४) दरभंगा, ६० कु. रेनू (७) लुधियाना, ६१ अशोककुमार (१५) लुधियाना, ६२ पुष्करनारायण (२०) लुधियाना, ६३ अखिलानन्द (१३) सौर बाजार, ६४ आनन्दमोहन (१६) इलाहाबाद, ६५ भूपनारायण (१६) कानपुर, ६६ यासीन (१७) मतलुपुर, ६७ कु. शीला, (१६) फैजाबाद, ६८ अमरचन्द (२०) ब्यावर, ६९ कु. उमा (१३) लश्कर, ७० सुखवीन्दरसिंह (१६) लुधियाना, ७१ मदनमोहनप्रसाद (१५) गया, ७२ मोहनलाल (१८) लखनऊ, ७३ वीरेन्द्रकुमार (१२) भोपाल गंज, ७४ चन्दनकुमार (१२) मशरक, ७५ एस. वेंकट रामन (१७) जमशेदपुर, ७६ बैकुण्ठनाथ (१४) महराजगंज, ७७ ओंकारसरन (१८) रामनगर, ७८ कु. इन्दुमती (११) विदिशा, ७९ वकीलचन्द (१६) बड़ौत, ८० चन्द्रशकुमार (१४) चन्दौसी, ८१ मेनालउद्दीन (१६) चम्पानगर, ८२ अलानूर (१९) अटरू, ८३ भागीरथ (१४) पूर्णियाँ, ८४ घनश्यामदास (१६) गाडरवारा, ८५ वीरेन्द्रकुमार (९) किशनपुर, ८६ सुशीलकुमार (१४) लखनऊ, ८७ सुरजीतलाल (१७) रुद्रपुर, ८८ मुरलीधर (११) छिन्दवाड़ा, ८९ प्रकाशचन्द्र (१२) पंडौल, ९० धर्मचन्द (१५) राय, ९१ कृष्णकुमार (१२) रांची, ९२ हीरालाल (१६) हिन्डोली, ९३ बलवन्तसिंह (१४) कानपुर, ९४ कु. निशा (१३) बड़वाह, ९५ अच्युतानन्द (१५) दरियापुर नेवादा, ९६ अयोध्याप्रसाद (१५) किशनगंज, ९७ महेन्द्रसिंह (१७) शिवपुरी, ९८ लतीफ (१७) चितौड़गढ़, ९९ अर्जुनप्रसाद (१५) पटना, ७५०० सुधीरराव (१५) इन्दौर, १ विजयकुमार (१४) मुंगेर, २ विपिनचन्द्र (१३) गादी, ३ सुर्दशनप्रसाद (१६) लोहरदगा, ४ नेत्ररंजन (१३) जामटोला, ५ अशोककुमार (१२) अलीगढ़, ६ विनयमोहन (१२) साहिबगंज, ७ रवीचन्द्र (१३) जबलपुर, ८ रामकुमार (१६) करमा, ९ रामरतन (१४) विदिशा, १० अजय (१६) लखनऊ, ११ कु. लीला (१५) रांची, १२ नूरअख्तर (१३) वैनी, १३ नरेशचन्द्र (१४) बागबहारा, १४ सुरेशकुमार (१३) इन्दौर, १५ सुनील (१४) झांसी, १६ जयप्रकाश (१४) धरहरा, १७ जगदीश प्रसाद (१५) मिरजान हाट, १८ कु. शकुन्तला देवी (१२) आगरा, १९ जयप्रकाश (१३) लोहरदगा, २० कुमारी आशा (१५) बड़वाह, २१ शशिकान्त (१४) झरिया, २२ युगलकिशोर (१६) पटना, २३ गोपालचन्द (१४) रांची, २४ गोलाम मुर्तजा (१५) रांची, २५ जयन्तकुमार (१६) रांची, २६ राजकुमार (१४) आगरा, २७ आदित्यप्रकाश (१४) कानपुर, २८ रुद्रावझलकृष्ण (१७) नागपुर, २९ सतीशकुमार (१५) अजमेर, ३० मोहनलाल (१३) मुरादाबाद, ३१ प्रेमबहादुर (१५) डिगबोई, ३२ अरविन्द-कुमार (१६) बिजनौर, ३३ मोहनलाल (१३) धनबाद, ३४ गोपालबिहारी (१६) शाहदरा दिल्ली, ३५ अजयकुमार (१४) लहरिया सराय, ३६ कमलाकान्त (१५) कलकत्ता, ३७ अनन्तमोहन (१२) सहरसा, ३८ जितेन्द्रनाथ (२०) झांसी, ३९ दिनेश (११) उरई, ४० रुद्रावझल वेंकटराव (२३) नागपुर, ४१ मशकूरआलम (१३) बुलन्दशहर, ४२ भूपालसिंह (१४) पिथौरागढ़, ४३ पुरुषोत्तम (१४) किशनगढ़ ४४ कन्हैयालाल (१६) किशनगढ़, ४५ दयाशंकर (१६) फतेहपुर ४६ कु. सावित्रीदेवी (१२) फतेहपुर, ४७ गुरुनाम-सिंह (१६) अनिसाबाद, ४८ सुरेश (१३) इन्द्रनगर।

धीरेन्द्रप्रसाद
(स. सं. १०८०९)

उमेशचन्द्र
(स. सं. १०८१८)

रामलाल
(स. सं. १०८२१)

आनन्दप्रकाश
(स. सं. १०९८९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनाम लो

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४७

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ दिसम्बर

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४७ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ दिसम्बर तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४७ के प्रश्न

१. नेत्र-परीक्षक किस यंत्र द्वारा आँख की पुतली पर प्रकाश-किरण फेंकता है ?

२. उस टेप रिकार्डर को क्या कहते हैं जिस पर स्वर के साथ-साथ दृश्यांकन भी सुरक्षित रखा जा सकता है ?

३. फोटो-निगेटिव की धुलाई में काम आने वाले घोल हाइपो तथा सोडियम हाइपो सल्फाइड में क्या सम्बन्ध है ?

४. हर्टिजियन तरंगों(ertizian waves)का सिद्धान्त क्या है ? इन्हें यह नाम क्यों दिया गया है ?

५. विश्व में सबसे ऊँचा और वर्तमान सक्रिय ज्वालामुखी कहाँ है ? उसका नाम तथा ऊँचाई भी बताओ।

६. अवस्था बदलने के साथ-साथ अँगुलियों की रेखाएँ भी बदलती रहती हैं इस कथन के सत्यासत्य की विवेचना कीजिए।

७. प्रयोग द्वारा सिद्ध किये जाने से पूर्व ही विद्युतचुम्बकीय तरंगों की उपस्थिति किस वैज्ञानिक ने कब सिद्ध की थी ?

८. नीयोप्रेन (Neoprene) क्या है ? किस उपयोग में आता है ?

९. किस वैज्ञानिक ने अपने पुत्र के साथ विज्ञान में किस कार्य के लिए, कब नोबुल पुरस्कार प्राप्त किया था ?

१०. आजकल कुछेक पोस्टरों (लिप्टन जैसे) के लाल, पीले, हरे आदि रंगों के अक्षर विशेष चमकीले दिखते हैं। वह चमक किस प्रकार प्राप्त की जाती है ?

प्रतियोगिता संख्या ४५ के प्रश्नों के उत्तर

१. प्रो. आवोगाड्रो (Avogadro) ने।

२. सन के पौधे से रस्सियाँ और भाँग, दोनों प्राप्त किये जाते हैं।

३. दाँतों की संख्या तथा संरचना देखने से।

४. ग्रोटे रबर ने, १९३७ में।

५. पार्श्व भाग पर।

६. पृथ्वी के दोनों ध्रुवों को जोड़ते हुए एक वृत्त खींचा गया। उसे मिरीडियन (meridian) कहा गया। उसके चतुर्थ भाग को चतुर्थांश अर्थात् क्वाड्रेण्ट (quadrant) कहा गया। उस चतुर्थांश का एक करोड़वाँ भाग एक मीटर का सही माप माना गया है।

७. एलेक्जेण्ड्रिया (मिस्र) स्थित फेरोस (Pharos) का प्रकाशस्तम्भ ; ४०० फुट ऊँचा।

८. आकाशीय विद्युत वायुमण्डल से नाइट्रोजन की विपुल मात्रा विच्छेदित करके खेतों पर बरसा देती है। वही खेती का प्राण-तत्त्व है।

९. Coconut crab नारियल के पेड़ पर बसेरा करते हैं और अधिकतर श्रीलंका के निकट पाये जाते हैं।

१०. जहाज के दिक्सूची में दोलन के बावजूद भी सही लेवल ज्ञात करने के लिए डायल पर खींची जाने वाली काली रेखा को लबर लाइन कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना हेक्टोग्राफ बनाइए

अरुणकुमार जाजू

यदि आप चाहते हैं कि आपके पास एक ऐसा यंत्र हो जिससे आप चाहे जितनी प्रतिलिपियाँ बना लें, तो हेक्टोग्राफ के द्वारा एक मैटर की आप ४०-५० प्रतियाँ निकाल लेंगे।

आवश्यक वस्तुएँ

बिस्कुट का खाली टिन, (एक ट्रे के रूप में) उसी की साइज का चिकना आर्ट पेपर; प्रतिलिपियों के लिए सादा कागज; १ औंस जिलेटिन; १ औंस brown demerara sugar; ६ औंस ग्लीसरीन; २½ औंस बेरियम सल्फेट।

अब शुरू कीजिए

जिलेटिन के बड़े टुकड़ों को छोटे कर लीजिए। उन्हें किसी बर्तन में ३ औंस पानी लेकर उसमें २४ घण्टे के लिए डाल दीजिए। दूसरे दिन उन्हें अच्छी तरह घुलाकर उसमें ग्लीसरीन डाल दीजिए। तेज आँच पर उसे पकाइए और लकड़ी की डण्डी से चलाते भी रहिए। जब घोल काफी गाढ़ा हो जाए तो उसमें लायी हुई शुगर डाल दीजिए।

बेरियम सल्फेट को १ औंस पानी में अलग किसी बतन में भली प्रकार घोल लीजिए। उस घोल को गर्म हो रहे मिश्रण में मिला दीजिए और समूचे पदार्थ को लेई जैसा बना लीजिए। टिन की ट्रे को सफाई से धो लीजिए ताकि चिकनाई आदि न रहने पाए। अब उपर्युक्त लेई जैसे मिश्रण को टिन में इकसार फैलकर पड़ा रहने दीजिए। दूसरे दिन वह रबर की सपाट सतह के रूप में जम जाएगा। यदि नर्म हो तो और पड़ा रहने दीजिए। यह आपका हेक्टोग्राफ तैयार हो गया।

स्टेशनरी की दूकान से हेक्टोग्राफ-स्याही ले आइए। यदि वह स्याही भी बनाना चाहें तो ¼ औंस मेथिल वायलेट एनिलीन तथा ¼ औंस स्प्रिट को ⅓ औंस पानी में मिलाकर तब तक हिलाइए जब तक एनिलीन घुल न जाए। बस, आपकी स्याही भी तैयार हो गयी। इस स्याही से ही आर्ट पेपर की शीट पर जो मैटर लिखना हो, लिख लीजिए। लिखी हुई ओर कागज को हेक्टोग्राफ पर तब बिछाइए जब स्याही सूख जाए। शीट को इस सफाई से बिछाना होगा कि उसमें कहीं भी सिलवट न रह जाए। १०-१५ मिनट उसी प्रकार चिपका रहने दीजिए। फिर उसे धीरे से उतार लीजिए। हेक्टोग्राफ पर यह आपकी मास्टर कापी तैयार हो गयी जो प्रतिलिपियाँ देगी।

जिन कागजों पर कापियाँ छापनी हों, उन्हें एक-एक करके हेक्टोग्राफ पर रखकर सावधानी से हलके-हलके दबाते चलिए और उठाते रहिए। इस प्रकार ४०-५० कागज छापकर स्याही फीकी पड़ जाएगी और आगे नहीं छाप सकेगी।

इसे पुनः काम में लेने के लिए आठ भाग पानी में एक भाग हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिला कर उससे हेक्टोग्राफ की सतह साफ कर लीजिए और अन्त में साफ पानी से भी धो लीजिए। पुनः सूखकर तैयार होने पर नये सिरे से आपकी सेवा को प्रस्तुत हो जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

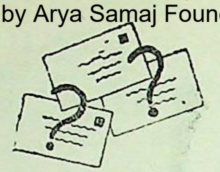

मदनमोहन श्रीवास्तव (१००३५) बलरामपुर

प्रश्न—वोल्टमीटर तथा वोल्टामीटर में क्या अन्तर है ?

उत्तर—वोल्टेज अर्थात विद्युतधारा मापने के लिए वोल्टमीटर का उपयोग होता है तथा द्रवों के विद्युत्विश्लेषण में प्रयुक्त विद्युत की मात्रा मापने के लिए वोल्टामीटर का।

मातादीन मिश्र (१०८११) मच्छटी (गाजीपुर)

प्रश्न—Ba O_2को बेरियम परावसाइड कहते है तो MnO_2को मैंगनीज डाइआक्साइड क्यों कहते हैं?

उत्तर—संयोजकता (valency) में अन्तर होने के कारण। Ba O_2 प्राप्त करने के लिए तो बेरियम आक्साइड को वायु में उच्च ताप पर तप्त किया जाता है, जबकि मैंगनीज डाइआक्साइड प्राकृतिक अयस्क के रूप में प्राप्त हो जाता है।

राजेशचन्द्र (३१५९) अलमोड़ा

प्रश्न—ग्लाइडर का सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर—वायु की गति और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के आधार पर ऐसे यान द्वारा वायु में उतराना जिसमें संचालक इन्जन की सहायता न ली जाए। यह एक प्रिय खेल भी है।

सुरेशकुमार श्रीवास्तव (९०८१) जौरा

प्रश्न—विज्ञान में नोबुल पुरस्कार सर्वप्रथम किन्हें दिया गया था ?

उत्तर—१९०१ में (१) भौतिकी में के. रान्जन को एक्स-किरणों के लिए, (२) रसायन में रासायनिक गतिविज्ञान तथा रसाकर्षण के विषयों में शोधकार्य के लिए जैकब्स वान हाफ को और (३) औषधि-विज्ञान में ए. वेहरिंग को डिप्थीरिया में सीरम के प्रयोगों पर शोधकार्य के लिए।

प्रदीपकुमार सिन्हा (९८७१) मुँगेर

प्रश्न—अब तक निम्नतम ताप किस अंश तक प्राप्त किया जा सका है ?

उत्तर— —२७३°C तक।

अनिलकुमार झा (१०५६४) पटोरीबसन्त

प्रश्न—यदि आकाश टूट पड़े तो ?

उत्तर—आकाश केवल नाम है, वस्तु कुछ है ही नहीं जो टूट पड़े। पृथ्वी को चारों ओर से लपेटे हुए वायुमण्डल में सूर्य-रश्मियों के परावर्तन से जो भिन्न-भिन्न रंग दिखते हैं वे ही बहुरंगी आकाश का आभास कराते हैं। इन्हीं में जलपूरित बादल मँडराते रहते हैं। अतः ऐसी कुशंका निर्मूल है।

कु. कुन्तल राठौर (१०१६१) आगरा

प्रश्न—सुना है कि एक पेड़ ऐसा है जिससे हाथीदाँत मिलता है, यदि यह सत्य है तो वह पेड़ कहाँ है ?

उत्तर—एक नहीं, अनेक पेड़ हैं। पश्चिमी तथा मध्य अमरीका में phytelephas और attalea जाति के पाम जैसे वृक्ष पाये जाते हैं। इनमें मानव-सिर के जैसे बड़े फल लगते हैं जिन्हें सुखाकर उनसे बटन आदि बनाये जाते है। वे बटन तथा अन्य वस्तुएँ ठीक हाथीदाँत जैसी लगती हैं।

रघुनाथसिंह (१०६१९) जमशेदपुर

प्रश्न—मोटरकार के इंजन में कार्ब्यूरेटर की क्या उपयोगिता है ?

उत्तर—पेट्रोल तथा वायु का ज्वलनशील गैस के रूप में मिश्रण करके इंजन के सिलिण्डर में ज्वलन के लिए भेजता है।

शरदचन्द्र (८५२३) वडाली

प्रश्न—मानव शरीर के बाल जीवित हैं क्या ? इनमें क्या पदार्थ रहता है ?

उत्तर—जीवित कोशाएँ, जीवद्रव्य, रोम-मूल आदि उपांगों से सम्पन्न, बाल हमारे शरीर का जीवित अंग ही हैं। बाहर दिखने वाले बाल, बढ़े हुए नाखून जैसे होते हैं जिन्हें वार-बार काटते रहने से कोई कष्ट नहीं होता।

सुरजीतसिंह (३७१४) चित्तौड़गढ़

प्रश्न—दवा में दी जाने वाली केप्सूल किस वस्तु की बनी होती है जो हम बेखटके गले के नीचे उतार जाते हैं ?

उत्तर—जिलेटिनयुक्त अहानिकर रासायनिक पदार्थ की बनी होती है जो शरीर में घुल जाती है और स्वयं कोई प्रभाव नहीं डालती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरिनाथमणि (३[illegible]) [illegible] (बस्ती)

प्रश्न—वायुमण्डल का प्रत्येक वस्तु पर इतना दबाव पड़ने पर भी हमारा शरीर पिचक क्यों नहीं जाता ?

उत्तर—शरीर के अन्दर यदि वैकुअम कर दिया जाए तो अवश्य पिचक जाएगा।

रवीन्द्रनारायण (६५७१) सिहोर (भोपाल)

प्रश्न—आँसू क्यों निकलते हैं ?

उत्तर—शोक अथवा हर्षावेश के कारण अश्रु-ग्रन्थियाँ फूल कर सक्रिय हो जाती हैं।

कृष्णचन्द्र अग्रवाल (५२६२) आगरा

प्रश्न—वह कौनसा जन्तु है जो नेत्रहीन होते हुए भी सबसे ऊँचा घर बना लेता है ?

उत्तर—दीमक ४० फुट तक ऊँची बाँबी बना लेती है।

विष्णुभगवान अग्रवाल (५२६१) ग्वालियर

प्रश्न—किसी बिल्डिंग में आग लगने पर उसका ताप अनुमानतः कितना पहुँचता है ?

उत्तर—तीन मिनट सेपूर्व ही १४००°C तक पहुँच जाता है, यह प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा चुका है।

सुरेशचन्द्र ([illegible]) बरेली

प्रश्न—डाँट-फटकार से मनुष्य का मानसिक संतुलन क्यों डगमगा जाता है ?

उत्तर—अपराधी व्यक्ति का संतुलन इतना नहीं डगमगाता जितना निरपराध ही फटकार सुनने पर। इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव अधिकांश तो अफसर की योग्यता पर निर्भर करता है।

दिनेशकुमार अग्रवाल (८८६७) उदयपुर

प्रश्न—क्रियाशीलता की दृष्टि से नाइट्रोजन एक सुस्त गैस है—टिप्पणी दीजिए।

उत्तर—नाइट्रोजन स्वयं निष्क्रिय है और वायुमण्डल का ७८% भाग घेरे हुए है। इसकी निष्क्रियता ही इसका महत्त्व है क्योंकि उसी के द्वारा यह अन्यान्य गैसों की तीव्रता को संतुलित किये रहती है, अन्यथा आक्सीजन जैसी प्राणवायु भी इसके अभाव में तीव्र होने पर घातक ही सिद्ध होती। हाँ, इसके यौगिक (नाइट्रेट आदि) तीव्रतः क्रियाशील हैं जो अधिकतर उर्वरकों में काम आते हैं।

तुरंत आराम और राहत के लिये

जोशीना

जोशीना प्रसिद्ध यूनानी नुस्खे 'जोशान्दा' का एक्सट्रेक्ट है। यह जुकाम के सभी लक्षणों को तुरन्त दूर करती है, बन्द नाक को खोलती है और आराम पहुँचाती है।

जोशीना की एक शीशी सदा अपने पास रखिये।

हमदर्द देहली • कानपुर • पटना

GAY/HD/538

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युतोत्पादन में क्रान्ति —

फ्यूएल सेल

080150

भुवनेश्वर गुप्ता (स. सं. ६१४)

सामान्यतः विद्युतोत्पादन व्यावसायिक प्रयोजन के लिए जनरेटरों द्वारा होता है, जिन्हें या तो पानी की तीव्र धारा अथवा वाष्प की शक्ति से चलाया जाता है। इन साधनों से उत्पादित बिजली को दूर-दूर तक भेजने में भारी खम्भे लगाने और तारों का जाल फैलाने में अत्यधिक खर्च तथा परिश्रम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऐसी बिजली को ट्रकें, कारें आदि चलाने में भी काम में नहीं लिया जा सकता। इन कठिनाइयों का एकमात्र हल फ्यूएल सेल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन सेलों के बनाने में रसायन को विद्युत शक्ति में परिवर्तित किया जाता है।

१८४२ में आविष्कृत, १९५५ में परिष्कृत

फ्यूएल सेल का आविष्कार तो इंग्लैण्ड के सर विलियम ग्रोव ने १८४२ में कर लिया था किन्तु सौ वर्षों से अधिक काल तक इस ओर किसी का ध्यान आकर्षित ही नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि उस बीच के समय में वाष्प इंजन, अन्तर्दाही इंजन और परमाणु-शक्ति जैसे महत्त्वपूर्ण आविष्कारों का प्रचलन तथा विकास हो रहा था। अतः एक शताब्दी भर फ्यूएल सेल का आविष्कार उपेक्षित अवस्था में पड़ा रहा।

इधर अमरीका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय के व्यवसाय-शिक्षा विभाग ने इस ओर अपना ध्यान दिया, इसका पुनः अध्ययन किया और इसके महत्त्व को पहचाना। उन्होंने अनुमान लगाया कि ट्रकों, कारों, बुलडोजरों, ट्रैक्टरों तथा छोटी बस्तियों के लिए बिजलीघर के रूप में इन सेलों का उपयोग क्रान्तिकारी सिद्ध होगा। हुआ भी ऐसा ही। १९६२ के अन्त में अमरीका के जनरल इलेक्ट्रिक कारपोरेशन ने सेलों को बनाने का कार्य मैसाचूसेट्स में प्रारम्भ किया। यह प्रयास प्रारम्भिक है तो भी इन सेलों द्वारा प्रति वर्ग फुट ४० वाट बिजली प्राप्त की जा सकती है।

रचना-विधि

ये सेल अनेक प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के सेल में दो प्लेटें होती हैं जिनमें से एक के नीचे हाइड्रोजन तथा दूसरी के नीचे आक्सीजन का उपयोग किया जाता है। हाइड्रोजन अपनी प्लेट को इलेक्ट्रॉन दे देती है जो तार के रास्ते दूसरी प्लेट तक पहुँचते हैं। साथ ही, इलेक्ट्रान रहित हाइड्रोजन के अणु भी एक मिश्रण में से गुजरकर दूसरी प्लेट के आक्सीजन से संयुक्त हो जाते हैं और पानी बनाते हैं। तारों को जोड़कर विद्युतधारा प्राप्त कर ली जाती है। इस प्रकार के सेलों में भी विभिन्नता होती है। उनमें भिन्न-भिन्न गैसें प्रयुक्त होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

।हाइड्रोजन के स्थान पर कार्बनमोनोक्साइड, Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ाकृतिक गैसें, अल्कोहल तथा प्रोपेन आदि गैसें प्रयुक्त की जाती हैं।

फ्यूएल सेल के लिए सस्ता कैटेलिस्ट

मिलवोकी के एक वैज्ञानिक ने ऐसे विकसित और सस्ते यन्त्र के निर्माण की सूचना दी है, जो फ्यूएल सेल की रासायनिक ऊर्जा को सीधे न्यून वोल्टेज की विद्युतधारा में परिवर्तित कर सकता है।

ये फ्यूएल सेल भू-उपग्रहों, हलके वजन के यन्त्रों, स्वचालित मौसम-अनुसन्धान केन्द्रों तथा अनेक अन्य कार्यों में उपयोग की दृष्टि से अमित सम्भावनाओं से युक्त हैं।

कार्य-विधि और विशेषताएँ

इन सेलों में न तो विद्युत शक्ति को संचित करने की आवश्यकता पड़ती है, न प्रयोग-शून्य अवस्था में इनकी क्षमता घटती है। सामान्य बैटरियों की अपेक्षा इनके द्वारा अधिक समय तक लगातार बिजली प्राप्त की जा सकती है।

इन्हें कार्य करने के लिए विशेष ताप की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। इनका यंत्र गति-हीन रहता है जिसके कारण न उसमें कम्पन होता है, न कोई शब्द। भार में अत्यन्त हलके होना इसका विशेष गुण है जिसके प्रति आकृष्ट होकर अमरीका की राष्ट्रीय उड्डयन तथा अन्तरिक्ष प्रशासन संस्था (NASA) अन्तरिक्ष-यानों के लिए इनके वृहत् उत्पादन में प्रयत्नशील है। अन्तरिक्ष ही क्यों, पृथ्वी-प्रदक्षिणा जैसी लम्बी, लगातार उड़ानों में इन सेलों का उपयोग इसलिए सर्वोत्तम रहेगा कि इनमें हाइड्रोजन और आक्सीजन के संयोजन से पीने योग्य पानी प्राप्त होता रहेगा और यों जल-भण्डार का बोझ यान में रखने की झंझट से बचा जा सकेगा। हलके, ठोस और दीर्घकाल तक चलने वाले फ्यूएल सेल अन्य सेलों से इस लिए श्रेष्ठतर हैं कि वे सामान्य सेल विकिरण द्वारा संचारित हो जाते हैं। इसी प्रकार फ्यूएल सेल रासायनिक बैटरियों से इसलिए श्रेष्ठतर हैं कि बैटरियों में संग्रहीत रासायनिक ऊर्जा बहुत ही थोड़े समय में समाप्त हो जाती है।

अन्य उपयोग

आजकल ट्रकों, बसों तथा कारों में पेट्रोल और डीजल आदि का जो प्रयोग होता है उनसे जहरीला धुआँ फैलकर नगर की वायु दूषित करता रहता है। साथ ही, थोड़ा रुकने के लिए भी इंजन को चालू रखना पड़ता है; अन्यथा बन्द करके पुन: चलाने पर बैटरी अधिक भार अनुभव करती है और कमजोर पड़ जाती है। फ्यूएल सेल इन सब दोषों से सर्वथा मुक्त हैं।

अनेक अमरीकी उद्योगों की ओर से शक्ति के स्रोत के रूप में इसके विषय में गहन अनुसंधान हो रहे हैं। उदाहरण के लिए, एलिस चामर्स ने ट्रैक्टरों और ट्रकों को चलाने के लिए प्रयोगात्मक फ्यूएल सेल प्रणालियाँ विकसित की हैं।

अभी तक उपग्रहों के भीतरी पुर्ज़ों और यन्त्रों को चलाने के लिए रासायनिक बैटरियों और सौर सेलों से बिजली प्राप्त की जाती रही है। अमरीका के दो भू-उपग्रहों में रेडियो चलाने के लिए बिजली प्राप्त करने के हेतु रेडियो आइसोटोप जैनरेटरों का प्रयोग किया जा चुका है। ●

हाइड्रोजन-आक्सीजन द्वारा विद्युत्तोपादन

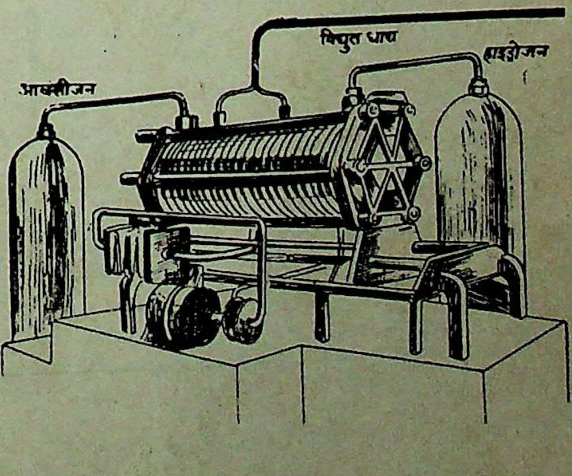

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौनसी जीविका आपके लिए सबसे उपयुक्त है?

'व्यवसाय चुनिए'
पुस्तिकाएं
पढ़िए

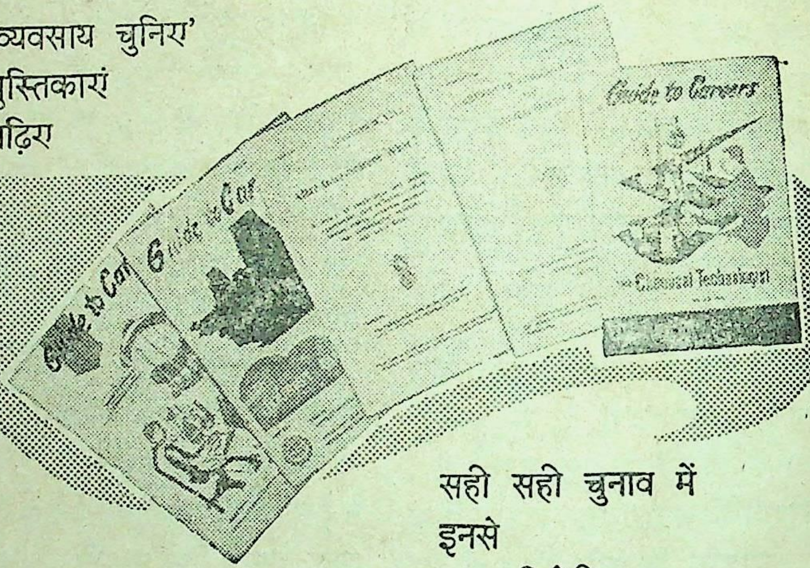

सही सही चुनाव में
इनसे
मदद मिलेगी

कृषि अधिकारी
सलोतरी
फारेस्ट रेन्जर
विमान इंजीनियर
खनन इंजीनियर
रासायनिक उद्योगविद
भू-वैज्ञानिक
धातु वैज्ञानिक
टूरिस्ट गाइड
एयर पाइलट
औज़ार निर्माता
मिलर (मेटल)
वातानुकूलन तथा प्रशीतन यांत्रिक
मशीनमैन (प्रिंटिंग)
चिकित्सक
दांत का डाक्टर
नर्स
समाज शिक्षा आयोजक
व्यायाम शिक्षक
शिल्प शिक्षक
लेखाकार (एकाउण्टैण्ट)
जीवन बीमा एजेंट
सांख्यकी विद्
कृषि और सम्बद्ध क्षेत्रों में व्यावसायिक अवसर
आफ्टर इण्टर साईंस व्हाट ?
... और अन्य

इनकी प्रतियां
(हिन्दी या अंग्रेज़ी में)
रोजगार
दफ्तर
अथवा
सरकारी
पुस्तक विक्रेता से
खरीदिये

रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय
भारत सरकार

DA 62/580

जगदीश मेहरा द्वारा एज्युकेशनल प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्रकाशित
[मुखपृष्ठ ब्रजवासी फाइन आर्ट औफसेट वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar